अर्हत पुराण

जैन इतिहास के झरोखों से

एवं

कुछ ऐतिहासिक पुरानी कथाएं

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

तथ्य संकलन प्रस्तुतकर्ता

स्वतन्त्र जैन जालन्धर 9855285970

अर्चना-राजेश जैन

86, करतार एवन्यु हैबोवाल,लुधियाना

जिस से तपस्या नहीं होती, वह अगर अपने को स्वाध्याय से जोड़ ले तो उसने तपस्या एवं स्वाध्याय दोनों का मज़ा चख लिया, जैसे मलाई खाने वाला मक्खन एवं मलाई दोनों का मज़ा चख लेता है।

गीता- धर्मोपदेश

वेद- ज्ञान

पुराण- प्रचीन कथाएं

उपनिषद- वेदों का ज्ञान चर्चा ऋषियों द्वारा

विभंग ज्ञान- आने से पूर्व खतरे का अभास

गणधर,चतुर्दश पूर्व एवंदशपूर्व वाले आचार्य कभी गलती से भी गलती नहीं करते इसलिए इनके द्वारा श्रुतज्ञान के लिपीबद्ध आगम ही मान्य हैं।

दो शब्द

जग में अंधियाला छाया था, मैं ज्वाला ले कर आया था ।
मैं जलती का तम हर न सका,मैं जीवन में कुछ कर न सका ।।

" अहो ! कष्टमहो कष्टं,तत्वं विज्ञायते न हि।"

अर्थात- अहो ! महान दुःख की बात है, बड़े शोक का विषय है कि सही तत्वं (परमार्थ) को नहीं समझ पा रहे ।

आज विश्वभर में नीम के वृक्ष कम हो रहे हैं और परमाणु विनाश से हर देश में कड़वाहट बढ़ रही है। परिवारों में मधुरता कम हो रही है जब कि शरीरों में शर्करा (शुगर) मात्रा बढ़ रही है । गुरुकुलों में विद्या (ज्ञान) बिक रहा है, जबकि विद्यार्थी गूगल से ज्ञान ले रहे हैं। गुरु का ज्ञान मस्तिष्क में बैठ जाता है, वहाँ हवा का ज्ञान हवा में रह जाता है । ब्रान्डेड जूते शोकेस में सजाए जाते है जो दर्शाता है कि नीच विचारों कि महानता हो रही है और वास्तविकता से दूर हो रहे हैं । प्रत्येक वस्तु आन लाईन मिल रही है परन्तु आत्म चिन्तन आफ लाईन हो रहा है।

मैं अपने जीवन पर विचार करता हूँ तो देखता हूँ बचपन भारत विभाजन में खो गया, बाल्यकाल परिवार का व्यवसाय के भटकन में निकल गया, यौवनावस्था घर-गृहस्थी में व्यतीत हो गया, पुण्योदय से सहभागिनी 43 वर्ष कदम से कदम मिलाकर जीवन यापन किया। परिवारिक जुम्मेवारियों से निवृत्त हुए कि व्याधियो ने आक्रमण कर दिया, जिसमें मधुमेह, रक्तचाप, रैटिनोपैथी, दो बार ऐन्जयोप्लासिट और फिर हृदय शल्य, स्वस्थय लाभ ही ले रहा था कि आकस्मात् जीवन साथी अलविदा कह गयी । बच्चों ने मुझे पूर्ण सहयोग दिया विशेषकर बेटी दमाद अर्चना-राजेश जैन जिनके पास रह कर जीवन का अन्तिम

सफर कर रहा हूँ । अर्चना ने मुझे कहीं से शुक्ल जैन रामायण ढूंढ़ कर दी पढ़ी और प्रवर्तक पंढित रत्न श्री शुक्लचन्द जी महाराज की अनथक मेहनत जो लुप्त हो चुकी थी को पुनः प्रकाशन किया, फिर उत्तर भारतीय प्रवर्तक प्रज्ञा महर्षि श्री सुमन मुनि जी महाराज ने कहीं से ढूंढ़ कर शुक्ल जैन महाभारत जीर्णावस्था में दी जिस पृष्ट को हाथ लगाओ फट जाता था को भी पढ़ने के साथ प्रकाशित करने का मन बना लिया। फिर प्रवर्तनी श्री पार्वती जी महाराज का जीवन चरित्र जो उनके जीवनकाल में 97 वर्ष पूर्व छपा था शेषकाल स्थिरावस्था में जालन्धर व्यतीत किये का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं हो रहा था कि जैन लाईब्रेरी चांदनी चौंक दिल्ली में से उस से भी पुरानी प्रकाशित पुस्तक सम्यक्त्व सूर्योदय नाम से धर्मोपदेश (जैन गीता) के नाम से लिपीबद्ध किया कि घातक व्याधि गुर्दा रोग जिसका उपचार किसी पद्धति मे नही जो जीवन और मृत्यु के बीच का संगम है जिसको ऐलोपैथी वाले डायलिसस के माध्यम से मुक्ति तो नहीं सहजता दिला देते हैं, लगभग एक वर्ष में 60 बार हो चुका है और मैं अपना समय स्वाध्याय में लगाया और जीवन के 7 दशक **व्यतीत कर** 11 जनवरी को 8 दशक मे प्रवेश करने से मन बनाया कि जो मैं जैन साहित्य को पढ़ रहा हूँ वह इतना विशाल है कि हर कोई उस को पढ़ने की हिम्मत नहीं रख सकता, उसको अति संक्षिप्त कर केवल सार को रोचक बनाकर अर्हत पुराण के नाम से लिपीबद्ध कर 80 सहधर्मीयों को आवश्य पढ़ा सकूँ ऐसा विचार है। पढ़ने वालों का पढ़ना ही मेरे लिए उनका आशीर्वाद होगा जिससे मैं शेष जीवन संतोषजनक व्यतीत कर सकूँ । लिखने में कुछ गलती रह गई हो तो क्षमा प्रार्थी हूं ।

विषय सूची

1.	श्रमण भगवान महावीर शासन	7
2.	रथ मूसल संग्राम	9
3.	नन्दन मनिहार	20
4.	इन्द्रभूती गौतम	23
5.	आत्मार्थी एवं ईश्वरवादी	28
6.	आचार्य सुधर्मा	31
7.	आचार्य जम्बूस्वामी	41
8.	आचार्य प्रभव स्वामी	45
9.	आचार्य संय्यभव स्वामी	48
10.	आचार्य यशोभद्र स्वामी	51
11.	आचार्य संभूतविजय स्वामी	53
12.	आचार्य भद्रबाहू स्वामी	54
13.	आचार्य स्थूलिभद्र स्वामी	63
14.	आचार्य महागिरि	70
15.	आचार्य सुहस्ती	70
16.	आचार्य गुण सुन्दर	70
17.	आचार्य श्यांमाचार्य	70
18.	आचार्य सांडिल्य	71
19.	आचार्य रेवतीमित्र	71
20.	आचार्य धर्म	72
21.	आचार्य भद्र गुप्त	72
22.	आचार्य श्री गुप्त	73

23.	आचार्य श्री वज्र स्वामी	73
24.	युगप्रधानाचार्य रक्षित	77
25.	आचार्य दुर्बलाचार्य	81
26.	आचार्य देवाद्धिक्षमाश्रमण	81
27.	विष्णु भगवान के 24 अवतार	95
28.	वेदों मे जैन धर्म	110
29.	पुराण में भगवान ऋषभदेव	112
30.	आचार्य उमास्वाति	122
31	आचार्य हेमचन्द्र जी	129
32	कुछ इतिहासकार	140
	आभार	
33	बुद्ध विष्णु का अवतार नहीं थे वर्तमान के अरिहन्त श्री सीमन्धर स्वामी	

नम्र निवेदन है कि पुस्तक पढ़ने के पश्चात अन्य भव्यात्माओं को पढ़ने के लिए प्रेरित करें जो कि अपने प्रचीन इतिहास से परचित हो सकें और पुस्तक पर किया परिश्रम सफल हो सके।

****

रहा न अब कोई काम दुनिया से, स्वाध्याय हो ध्येय अपना,
मिले महवीर का शरणा, वैरं वज्झं न कणई अन्तिम हो शब्द अपना॥

अर्हत पुराण

ब्रह्मा,विष्णु, महेष, शिव शंकर हरि जिन नाम।

ऐसे आदि जिनेश स्तुति, पावे उत्तम स्थान ॥

श्रमण भगवान महावीर शासन

संस्कृति के आदि पुरुष ऋषभ है जिन्हें आदम के नाम से पुकारा जाता है। सनातन ग्रन्थों में आदि पुरुष शिव के नाम से पुकारा जाता है । भगवान ऋषभदेव से ही कर्मनिष्ठा और धर्म निष्ठा से इस युग में क्रान्ति के साथ अराधना उपासना का क्रम चालू हुआ। असिमसि-कृषि का आगाज हुआ। जब ऋषभ ने मानव को समस्त विद्याएं सिखला दी तब उन्होंने स्वयं दीक्षा ग्रहण कर निर्दोष भिक्षावृति से निर्वाहन परम्परा का सन्देश दिया । इनके साथ दीक्षित हुए 4000 सन्यासी कठोरता को सहन नहीं कर पाए और अपने-अपने अनूकूल चलने लगे जिससे 363 मत पनप उठे । ऋषभ से मोक्ष एवं साधना का क्रम आरम्भ हुआ । हमारे 24 तीर्थंकर हुए सभी राज घरानों से ऋद्धि-सिद्धि से भरपूर सुख सम्पदा को छोड़ त्याग मार्ग पर चलकर सिद्ध-बुद्ध हो गये । वैदिक परम्परा भी 24 अवतार

मानती है इनके धार्मिक विधान जल स्नान,मूर्तिपूजा,यज्ञ एवं बलिप्रथा के आडम्बरों से भरा है और ईश्वरवादी मान्यता है जबकि हमारी संस्कृति आडम्बर हीन आत्मार्थी संस्कृति है ।

इस परम्परा में भगवान महावीर 24 वें तीर्थंकर हुए, जो हमारे इस युग के शासनपति है, भगवान ऋषभदेव और भगवान महावीर के पांच महाव्रत थे और 22 तीर्थंकरों के 4 महाव्रत होते थे , वहा ब्रह्मचर्य को परिग्रह में ही माना जाता था और आर्हत धर्म से जाना जाता था । महावीर ने आडम्बर रहित विवेक, दान, शील तप, भावना में मोक्ष का सिद्धांत दिया। महावीर ने साढ़े बारह वर्ष घोर तपस्या जिसमें महान परीषह सहन केवलज्ञान प्राप्त किया । इसके बाद गौतम जी के नेतृत्व में 4411 पंडितों ने अपने-अपने आग्रह को त्यागकर दीक्षा ली और प्रभु महावीर से समस्यों का समाधान प्राप्त किया जो हमारे 32 आगमों के रुप में हमें उपलब्ध हैं। इसका मूल भगवान के ग्यारह गणधर जिन्हों ने श्रुतज्ञान के रुप में आचार्य सुधर्मा और जम्बू जी की जोड़ी ने प्रश्न-उत्तर के संवाद द्वारा आचार्यों को दिया जो आज हमें उपलब्ध है । महावीर के समय अचेलक एवं सचेलक परम्परा थी । जो अत्याधिक साधना को धारण करते हुए जिनकल्पी आरण्यवासी बन जाएं करतल भिक्षा, तरूतल वास, मौन धारण, जनता से अलगाव, जितना तप हुआ किया अन्यथा राहगीरों से जो भिक्षा मिली ग्रहण कर

ली । सचेलक वस्त्र धारी सन्त होते थे समाज जागरण का दायित्व उन पर होता था । वे पात्र भिक्षा तथा कल्प व्यवस्था एवं सूत्र धारण से बंधे होते थे दोनों के महाव्रत बराबर होते थे। महावीर के 500 वर्षों तक ऐसी व्यवस्था चली कोई सम्प्रदाय वाद नहीं था । जो आगे चलकर दिगम्बर और श्वेताम्बर के रुप में सामने आई । दिगम्बरों नें स्त्री मोक्ष नहीं माना और मूर्तिपूजा का स्वरुप आता गया । कुछ धारणाएं मजबूरी बन गई जिस से धीरे-धीरे शिथिलता आती गई । आचार्य देवादिश्रमण तक श्रुतज्ञान कण्ठस्त था जैन शब्द भी नहीं था, आर्हत या सरावगी (महावीर को मानने वाले) कहा जाता था ।

महावीर शासन काल की कुछ विशेष प्रमुख घटनाएं

रथमूसल संग्राम

(हाथी से सीधा देवलोक)

भारत के इतिहास में तीन महायुद्ध हुए पहला रामायण काल श्री राम और रावण के बीच का, दूसरा महाभारत काल का कौरव और पांडवों के बीच और तीसरा रथमूसल नाना श्री चेटक और दोहता कोणिक के बीच महावीर काल में दोनों भगवान महावीर के उपासक ही नहीं चेटक मामा और कोणिक माता त्रिशला की भतीजी का पुत्र भी था। तीनों युद्ध की पटकथा के पीछे मूल नारी का सीधा कारण है । घर की शांती का मूल कारण नारी है और नर

की प्रेरणा शक्ति भी नारी है, निर्माण की मोक्ष शक्ति भी नारी है। नारी एक रचनात्मक विद्या है तो नारी विध्वंस की आंधी भी है, त्याग की अन्तिम तथा सम्पूर्ण व्याख्या का नाम यदि नारी है तो नरक की सीढ़ी भी नारी है । नारी ने मिट्टी से नहीं अपने रज से चक्रवर्ती एवं तीर्थंकरों को जन्म दिया । नारी ने ही नरक तक चक्रवर्तियों और तीर्थंकरों को मोक्ष तक का रास्ता प्रशस्त किया । यह गंगा सी पवित्र और वैतरणी सी कीचड़मयी भी है । भारत में नारी देवी के रुप में मानी जाती है और भारत में ही नारी की दूर्दशा भी होती है। सती प्रथा, बाल विधवा को अशुभ और पुरुष प्रधान देश नारी को जूती के समान की कुरीतियां भी भारत में ही हैं । जहां बच्चियों को कंजक के रुप में पूजा जाता है वहीं आजकल बलत्कार की घटना भी होती रहती हैं ।

पहला रामायण काल श्री राम और रावण के बीच का, दूसरा महाभारत काल का कौरव और पांडवों के बीच युद्ध समस्त भारत में ही नही अपितु परे विश्व में प्रसिद्ध है जबकि तीसरा रथमूसल युद्ध केवल जैन संस्कृति में ही प्रसिद्ध है क्योंकि युद्ध के नायक अहिंसा के लम्बरदार श्रमण भगवान महावीर के उपासक होते हुए आपस में क्रोधाग्नि के शिकार हो गये। अहिंसा कायरता नही अहिंसा सत्य का मार्ग है । यदि इस युद्ध का कारण महारानी पद्मावती धर्मपत्नी महाराजा कौणिक है परन्तु मूल कारण पूर्व जन्म कृत कर्म है । थोड़ी से दृष्टि डाले कि किसी का उपहास करना और

उपेक्षा कर अपनी वचनबद्धता को विस्मृत हो जाना अन्याय से दुःखी आत्मा क्या रुप धारण करती है, प्रभु महावीर ने कर्म बंध का उल्लेख करते हुए राजा श्रेणिक और कोणिक के पूर्व भव बताया।

पूर्वभव में राजा श्रेणिक भरत क्षेत्र का वसन्त नगर में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था और उसकी पटरानी अमरसुन्दरी नामक की देव कन्या थी और उसके पुत्ररत्न पैदा हुआ जिसका नाम सुमंगल (श्रेणिक) था और जितशत्रु का मन्त्री के श्येनक नाम का पुत्र हुआ जो पूर्वकृत प्रबल पाप कर्मों से जुगस्पाप्रेरक (बेडोल) शरीर जिसकी अकृति देख सुमंगल उपहास करता रहता था जिससे श्येनक अति दुःखी होता था वह इस अपमान को सहने में विचलित हो जाता था और अस्वस्थ हो गया आखिरकार दुःखी हो कर बिना किसी को बताए वह वसन्तनगर से दूर प्रदेश जा कर तपस्वियों के सम्पर्क में आया, दुखगर्भित वैराग्य हो गया दीक्षा धारण कर घोर तपस्या मास-मास का तप करने लगा । इधर सुमंगल वसन्तपुर का महाराजा बन गया । श्येनक भी विचरते हुए वसन्तनगर पधार गया जनता पहचान लिया यह मन्त्री पुत्र घोर तपस्वी है और उनका आदर-सम्मान करने लगे और महाराजा सुमंगल को भी पता चल गया और वह प्रायश्चित के भाव से उसको मास खमण के पारणें के लिए प्रार्थना कि जिसे शेयनक ने सहर्ष स्वीकार कर ली। समय आने पर श्येनक राजमहल पहुँचा कि महाराज

अस्वस्थ हो गये और किसी ने पारणें के लिए नहीं कहा,श्येनक वापिस अगले मास खमण धारण कर तप में लीन हो गया फिर सुमंगल ने महल में पारणें करने की विनती की और समय आने पर बिमार हो गया, फिर अगले मास खमण में लीन हो गया और फिर स्वस्थ होकर राजमहल में पारणे की विनती की ऐसे छः मास बीत गये और श्येनक पारणें के लिए राजमहल गये, पारणे की पूरी तैयारी की गई, जब श्येनक राज महल पहुंचा तो राजा अस्वस्थ हो गये, कर्मचारियों ने कहा- यह मनहूस है जब आता है महाराजा बिमार पड़ जाते है और उसकी पिटाई कर डाली जिससे श्येनक का कोई भी अंग ठीक न रहा और तड़पता हुआ नियाना कर लिया कि मेरी तपस्या का फल मैं इससे आवश्य बदला लूँ और मर कर वाणव्यंतर देव बना, उदर सुमंगल भी स्वस्थ होकर प्रायश्चित भाव से तापस बन गया और मृत्य के बाद व्यंतर देव बना । आगे चलकर दोनों च्यवन कर सुमंगल राजा श्रेणिक बना और श्येनक महारानी चेलना के गर्भ में आकर कौणिक के रुप पुत्र हुआ॥ वैर भाव से कौणिक पिता को बन्दी बनाकर राज्य छीन लिया और श्रेणिक को प्रतिदिन कोढ़े लगवा मृत्यु दंड दे दिया ।

राजा श्रेणिक अपने बचपन काल में अतिसुन्दर ऐश्वर्य से भरपूर और बौद्ध भिक्षुओं का अनुयायी था एकबार उसने किसी तपस्वी सन्त के गले में सर्प डाल दिया जिससे

सातवीं नरक का बंध हो गया । चेलना इनकी तीसरी पत्नी थी और राजा चेटक की पुत्री थी जो भगवान महावीर का अनन्य उपासक था और वह गणतन्त्र राजगृही का अधिपत्यी जिसके अधीन नौ लच्छी और नौ मल्ली महाराजे थे । रानी चेलना ने महाराजा श्रेणिक को जैन धर्म में परिवर्तित कर भगवान महावीर का अनुयायी बना दिया और भविष्य जानकर प्रायश्ति से तीर्थंकर गोत्र का बंध किया जिससे अगले आने वाली चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर होगें ।

युद्ध का कारण- राजा श्रेणिक का बड़ा बेटा अभय कुमार था वह कौणिक से भिड़ना नही चाहता था और वे पांचमहाव्रत अंगीकार कर जैन भिक्षु बन गया । महाराजा श्रेणिक ने कौणिक की राज्यलिप्सा को भांपते हुए अपने पुत्र वेहलकुमार को एक सेंचानक गंदहस्ती , कुछ सेना और आठ लड़ी का हार सौंप दिया । जिससे वह अपनी मस्ती में सज-धज कर रानियों सहित गंगा स्नान हेतु निकलते, जलक्रीड़ा करते. रानियों की मस्ती तथा हाथी की विवध कलात्मक कला कौशल से भरपूर आनन्द से जनता के प्रिय बन गए, अभय कुमार के वैराग्य से वह भी धार्मिक वृति से कोणिक और काल कुमार आदि दस भाईयों की मण्डली से दूर रहने लगा। उधर रानी पद्मावती जब दासियों द्वारा प्रशंसा सुनती तो मन में ईर्षा से महाराजा कोणिक को कहने लगी आप के राज्य में सुख-समृद्धि वैभव से भरपूर है परन्तु

मेरी इच्छा है कि मैं भी आठ लड़ी का हार पहन कर गंधहस्ती की सवारी कर आप के साथ गंगा श्नान करूं।
कोई बात नहीं मै वेहल कुमार को कह दूँगा कि गंधहस्ती और आठ लड़ी हार दे दे । वेहल कुमार को कहा गया और वह षडयन्त्र समझ गया और नाना चेटक की शरण में चला गया । कईं बार राजदूत भेजे परन्तु चेटक ने समझाबुझा कर वापिस भेज दिये और फिर कहा यह हमारे घर का मसला है बीच में रिश्तेदारों को नहीं आना चाहिए । राजा चेटक ने बड़े सम्मान ढ़ंग से कहा आप भी उसी पिता के पुत्र है, ये भी इसलिए आप अपने साम्राज्य का आधा भाग दो हार, हाथी और वेहल्ल कुमार आप को मिल जाए गा । कोणिक को अपनी युद्ध कौशल का अंहकार नाना की बात न मान कर युद्ध की ठान ली और दस भाईयों के साथ परामर्श उनको युद्ध में साथ आने का निमन्त्रण दिया और रानी पद्मावती ने शतरंजी चाल अपने खून से कोणिक को तिलक कर क्षत्रियपन पर विवश कर दिया । राजा चेटक वैशाली का महाराजा था और उसके अधीन नौ लच्छी और नौ मल्ली राजाओं को बुला कर कहा अहिंसा कायरता नहीं, शरणागत आये की रक्षा करना हमारा दायित्व है, आप के विचार, सब ने कहा हम युद्ध के लिए तैयार ।

मैदान में दोनों तरफ फौजें आमने- सामने हो गई, कोणिक के अधीन उसके दस भाई अपनी अपनी सेना लेकर पहुँच गए, जिसमें कोणिक के पास 33 हजार हाथी,

33हजार घोड़े और रथ एवं 33 कोटि सेना मेदान में आ गई । राजा चेटक एवं उसके अधीन 18 गणराज्य के नरेश जिसमें 57 हजार हाथी, 57 हजार घोड़े और रथ एवं 57 कोटि पैदल सेना मेदान में आ गई। राजा चेटक ने कहा धरती को रक्तरंजित करने का कोई लाभ नहीं होगा । कुमार काली सभी रिश्ते भूल कर ने कहा- बूढ़े क्यों मौत को निमन्त्रण दे रहा है कह कर बाण चला दिया, राजा चेटक इतना कुशल था कि उसी समय उसने अपने बाण से काट कर काली कुमार का अन्त कर दिया । कोहराम मच गया और काली कुमार की सेना में भगदड़ मच गई । ऐसे ही कोणिक के दस भाई लड़ते दस दिन में मारे गए । अब कोणिक अकेला रह गया। युद्ध के समाचारों से चम्पा में भयावत छा गया और भगवान महावीर का पदार्पण हुआ और महारानी काली ने प्रभु से पूछा युद्ध में मेरे पुत्र कैसे है महावीर निमित्त से चेटक का शिकार हो गया इसी प्रकार सभी राज कुमार मारे गये धरती रक्तरंजित हो गई तभी सभी महारानियां शोक विहल होकर आर्त ध्यान मे चली गई और प्रभु महावीर की वाणी से संभल कर सब दीक्षित होकर कठिन तपस्या कर संथारा संलेखना से शरीर त्याग किया ।

कोणिक युद्ध का अकल्पित भयानक देख कर हताश हो गया, विचार करने लगा कि बिना विचारे महाराज चेटक की शक्ति मैं युद्ध करने लगा, अब यह मेरा भी अन्त कर देगा, अब युद्ध करना उचित नहीं परन्तु निर्लज्ज हो कर

लौटना भी उचित नहीं, पूर्व जन्म में तपस्वी था तो चेटक के पास दिव्य शक्ति जिसे जीत कोई नहीं सकता । कोणिक ने तेले तप की अराधना देव सहायता के लिए की जिससे भवनपति का देव चमरेन्द्र और देवलोक का देव शकेन्द्र आकर्षित होकर उपस्थित हुए और पूछा क्यों अवाहन किया।"देवेन्द्र ! मैं संकट में हूँ । मेरी सहायता कीजिए और दुष्ट चेटक को नष्ट कर दीजिए ।" कोणिक ने याचना की।

" कोणिक तुम्हारी माँग अनुचित है . चेटक नरेश श्रमणोपासक और मेरे साधर्मी हैं। मैं उन्हें नहीं मार सकता, हां तुम्हारी रक्षा कर सकता हूँ जिससे तुम्हारी विजय हो।" शकेन्द्र ने कहा !

कोणिक को इससे सन्तोष हुआ और शस्त्र सज्ज अपने उदायी नामक हस्ति-रत्न पर सवार होकर मेदान में उतरा, शकेन्द्र ने एक वज्रमय कवच कर कोणिक की सुरक्षा की और फिर इन्द्र ने महाशिलाकंटक नाम का युद्ध की व्यवस्था की जिसमें मनवेन्द्र और देवेन्द्र नाम के देवता और विपक्ष में चेटक और अठारह गण राजा और विशाल सेना थी। परिणाम शत्रु के लाए हुए विशाल शिला भी एक छोटे कंकर के समान हो हए और कोणिक की तरफ से चलाए कंकर महाशिला बन गए, इस देव-चलित युद्ध ने चेटक की सेना का विनाश कर दिया, वहुत से मारे गये बहुत घायल हो गये और बाकी भाग गये, गण राजा भी

भाग गये और इस युद्ध में चौरासी लाख सेनिक मारे गये जो नरक तिर्यन्च योनि में उत्पन्न हुए ।

दूसरे दिन रथमूसल संग्राम हुआ । अपनी पराजय और सुभटों के विनाश होते हुए पुनः चेटक नरेश अपने अठारह राजाओं की सेनाओं के साथ मेदान में उतरे और कोणिक अपने भूतानन्द हाथी पर आसीन हो मेदान में आया। आगे-पीछे देवताओं का कवच । चेटक का सेनापति वरुण जो ऋद्धिसम्पन्न था को चेटक का निमन्त्रण मिला तो उस दिन उस का बेला (दो व्रत) था वह बिना पारे तेला ग्रहण कर रथमूसल संग्राम में उतरा सामने कोणिक का सेनापति ने कहा- चला तेरा शस्त्र मैं सावधान हूँ । " नहीं मित्र, मैं श्रमणोपासक हूँ, जब तक मुझ पर कोई वार नहीं करता, मैं अपना शस्त्र नहीं चलाता, तुम्हारे वार के बाद मैं प्रहार करूँगा। इतने में कोणिक के सेनापति ने वार कर दिया जो वरुण की छाती में धस गया और बिना प्रवाह वरुण ने बाण चलाया जिस से शत्रु क्षत-विक्षत हो कर मृत्यु को प्राप्त हुआ । घायल वरुण ने रणक्षेत्र से अपना रथ हटाया, बाण निकाला,घोड़े खोले और मुक्त कर दिया । संथारा ग्रहण कर अरिहन्तो-भगवंतो को नमस्कार किया, हे भगवन्, आप मुझे देख रहे हैं पहले मैंने आपसे जीवन पर्यन्त स्थूल परिग्रह किया था अब मैं पापों का सर्वथा त्याग, अन्नशन-पानादि और इस शरीर का भी त्याग करता हूँ । चेटक भी अपने अबोध बाणों से शत्रु से जुझने लगे परन्तु देवमाया के आगे

विफल होते गये । इस युद्ध में देवमाया से एक रथ बिना अश्व, बिना रथवान के युद्ध क्षेत्र में आ गया, चारों तरफ घूमता है और रथ में से मूसल समान अस्त्र निकल शत्रु पर प्रहार करते हैं जिससे चेटक के छियानवें लाख सेनिक रथ-मूसल संग्राम की भेंट चढ़ गये और अठारहों राजा भाग खड़े हुए चेटक की पराजय हुई जिससे इसका नाम रथ-मूसल संग्राम पड़ा ।

रात को वेहल्ल-वेहास कोणिक के शिवर में पहुँच कर असावधान सेनिको का संहार किया । अपना काम करके वह रात्रि के अन्धेरे में वापिस आ गये। बहुत खुश,उधर इस प्रकार का विनाश देख कोणिक चिन्तित, मन्त्रियों से विचार-विमर्श, मन्त्रियों ने कहा सचेनक हाथी का काम तमाम हो जाए तो उपद्रव रुक सकता है।

उनके आने के मार्ग में खाई खोद कर, खेर की लकड़ी के साथ अंगारे भरे गये और उसे ढ़क दिया गया जिससे किसी को शंका न हो । वेहल्ल अपनी सफलता से उत्साहित वे पूर्व की भांति शत्रु का विनाश करने आये जिससे गजराज को आगे आने वाली विपत्ती का ज्ञान हो गया और रुक गया,क्योंकि वह विभंगज्ञान वाला था ।

स्वामी ने कहा- सचेनक आज तू भी अकड़कर पशुपन दिखाने लगा, तू कायर क्यों हो गया, तेरी बुद्धि और साहस लुप्त हो गये । कटु वचन सुन कर सचेनक ने अपने स्वामी को बलपूर्वक गिरा दिया और आगे बढ़ गया और अग्नि भरी

खाई में जा गिरा और जल मरा । जिससे विहल्ल कुमार भगवान की शरण में चला गया और दीक्षा धारण कर ली । चेटक भी वैशाली चला गया, जीवन से ऊब गया, जिससे सत्यकी अकाश मार्ग से विशाली आया और चेटक तथा नगर निवासियों को उड़ा कर पर्वत पर ले गया । चेटक ने मरने का मन बना कर एक कुँए में कूद पड़े उधर घरणेन्द्र ने उपयोग से देखा सधर्मी भाई चेटक को उठा कर अपने भवन में ले गया, वहां जाकर अलोचनादि कर अरिहंत शरण धर्मध्यान युक्त आयु पूर्ण कर स्वर्गगमन किया । कोणिक मर कर छटे नरक में गया।

यह सब पूर्व कर्मों का खेल है हमें सावधान करता है कि वैर-विरोध मे किसी का उपहास न करे और जितने भी दुःख हम झेलते है वह सब पूर्व जन्मों में किये कृतकर्मों का फल है सुख-दुःख देने वाला कोई और नहीं हमारे अपने ही कर्म हैं । यह हमारे अन्तगढ़ सूत्र के आठवें अंग का आठवां अध्याय है जो पर्युषण पर्व के आठवें दिन वाचना होती है किन्तु हमारे श्रमण-श्रमणियां आगम वाचना करते हुए श्रेणिक और कोणिक के पूर्व कृत कर्म का विवेचन नहीं करते जो आज के युग में अति उपयोगी है । आज शुभ कर्मों से जिस पर श्रीदेवी की अपार कृपा हो जाती है वह अहं-हंकार में निर्दोष-असहाय को शोषण,उपहास एवं तिरस्कार करने से नहीं चूकता जिससे न जाने कैसे कर्म बन्ध हो जाते है और अबाधा काल पूर्ण होने पर जब हम

दुःखी होते हैं तो भूल जाते है पूर्व जन्मों में हम कौन से कर्म बन्ध कर आये है और दोष किसी ओर को देते रहते हैं।

****

नन्दनमनिहार

जैन आगमों में एक कथा प्रचलित है नन्दन मनिहार जब उसने श्रमण भगवान महावीर के मुख से जिनवाणी श्रवण की तो श्रावक के बारह व्रत अंगीकार कर लिए । ग्रीष्म काल में जब अतीव गर्मी पड़ रही थी तो पक्खी का दिन था तो उस ने निर्जल व्रत (पौषध) धारण कर ली, शिखर दोपहर को गर्मी से प्यास लगी गला सूखने लगा विचरों में उत्थल-पुथल मच गई परन्तु प्रण था कि जल ग्रहण नहीं करना जैसे तैसे दिन व्यतीत हो गया रात को अधिक प्यास लगी परन्तु मन को दृड़ रखा कि पौषध व्रत है, खंडित नहीं होने देना । रात बीत गई प्रातः नवकारसी के बाद पारणा किया और विचार करने लगा कि मेरी तो एक दिन में हालत खराब हो गई, जनता इस गर्मी में सफर करती है उनको कहीं पानी नहीं मिलता तो क्यों न मैं नगर के बाहर एक सुंदर बगीचा, शुद्ध जल के लिए बावड़ी बनवाऊँ जिससे यात्रियों को सुविधा मिले । विचार कर अगले दिन नगरी के राजा के पास गया और अपनी बात रखकर कहने लगा, 'राजन ! यदि आप मुझे नगर के बाहर कुछ जमीन का टुकड़ा दें तो मैं ऐसा काम कर

सकूँ । राजा ने विचार किया, काम तो उत्तम है इसमें योगदान देना चाहिए । राजा ने नगर के बाहर कुछ जमीन दे दी जिसमे वह अपनी भावनानुसार जनहित कार्य कर सके । आज्ञा मिलते ही नन्दन मनिहार ने कुशल कारीगर बुलाए और काम आरम्भ करवा दिया । बावड़ी बन गई, लोग आते है नहाते है, पानी पी कर अपनी प्यास एवं थकान दूर करते हैं । श्रावक नन्दन हर प्रकार की सुविधा का ख्याल रखता था । समय का चक्र चलता है असातावेदनीय कर्मों का उदय हुआ और श्रावक को एक साथ सोलह रोग उत्पन्न हो गये, हर प्रकार की औषध चिकत्सकों द्वार दी गई परन्तु कोई लाभ नहीं हो रहा । सभी वैद्यों ने कहा- सेठ जी अब भगवान का सहारा लो। सेठ जी का मन न तो भगवान में और न वैद्यों की दवाई में, केवल ध्यान मेरी बावड़ी की देख-रेख कैसे होगी । कौन संभालेगा. कौन सफाई करवाएगा विचार करते करते जीवन लीला समाप्त हो गई । बावड़ी से अत्याधिक मोह के कारण उसी बावड़ी में मेंढ़क बनकर पैदा हो गया । परन्तु यह ज्ञान तो है नहीं मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ परन्त खुश है यह मेरा स्वर्ग ही है । जनता आती है प्यास बुझाती है नन्दन मनिहार के गुण गाती है । मेंढक के मन में कौतूहल मच रहा है यह नन्दन मनिहार कौन है जिसके दुनिया गुण गान करती है, मैं बार बार नाम सूनता हूँ. नन्दन मनिहार की जय हो, मैंने यह नाम कहीं सुना हुआ है चिन्तन चल रहा है। एक दिन दो युवक आए पानी पिया और वार्तालाप

कर रहे हैं, चलो भाई जल्दी चलो नगरी में भगवान महावीर आए हुए हैं, उनके दर्शन करने चलना है। महावीर का नाम सुनते मेंढक की खुशी की कोई सीमा न रही और जात्स्मरण ज्ञान हो गया । याद आ गया कौन महावीर और कौन नन्दन मनिहार । बावड़ी से बाहर आया और फुदकते-छलांग लगाते भगवान महावीर के दर्शनों के लिए जाने लगा । विचार करने लगा भगवान क्या समझेगें श्रावक हो कर मेंढक बन गया, राजमार्ग की ओर अग्रसर हो रहा है । एक तरफ से राजा श्रेणिक की सवारी आ रही है पूरी शान-शौकत के साथ राजा रथ में और आगे दो अंगरक्षक घोड़ों पर सवार चल रहे हैं कि एक घोड़े के पांव नीचे मस्ती में झूमता महावीर के दर्शनों के लिए चल रहा मेंढ़क आ गया । घायल हो गया तड़पने लगा कि अब भगवान के दर्शन कैसे कर पाऊँगा, भाव स्तुति की और प्राण त्याग दिए और क्षण भर में स्वर्ग में दर्दुर नामक देव बना और भगवान महावीर के समोसरण में आकर दर्शन किए। विचारणीय है कि एक मेंढ़क का जीव प्रभु भक्ति से देव बन सकता है तो हम तो सद्भक्त हैं ।

****

केवली काल

इन्द्र भूति गौतम

निर्वाण- वीर निर्वाण संवत 12

आर्य सुधर्मा

आचार्य काल- वीर निर्वाण संवत 1 से 20

आर्य जम्बू

आचार्य काल- वीर निर्वाण संवत 20-64

इन्द्र भूति गौतम

इन्द्र भूति गौतम गणधर का जन्म ईसा से 607 वर्ष पूर्व मगध राज्य के सताकेन्द्र राजगृह के समीपवर्ती गोबर ग्राम नामक एक ग्राम में गौतम गोत्रीय-ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके अग्निभूति और वायुभूति दो सहोदर भाई थे । इन तीनों ने विद्वान शिक्षा गुरु की सेवा में रहकर चारों वेदों के साथ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस एवं ज्योतिष इन वेदांगो और मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र एवं पुराण, कुल मिलाकर सम्पूर्ण चौदह विद्याओं का सम्यक् अध्ययन किया। इन के पास 500 शिष्य थे । हजारों विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर वेद-वेदांङ्ग के आचार्य बने ।
कर्मकाण्ड एवं यज्ञ-यागादि क्रियाओ के अनुष्ठान में अति निष्णात और वेद विद्या में परांगत की यशोगाथा दशो-दिशाओं में फैल चुकी थी । जब भगवान महावीर को घोर तपस्या के बाद केवल्यज्ञान हुआ तो देवता गण अपने-अपने विमानों में महावीर के समोसरण में जा रहे हैं । गौतम ने अपने यजमान सोमिल को कहा-देखो स्वयं इन्द्रादि सभी देव सशरीर तुम्हारे यज्ञ में उपस्थित हो रहे हैं । उसी समय देव विमान यज्ञ स्थल से आगे बढ़े ।

अरे । ये देवगण पास ही किसी स्थान पर आकाश से नीचे उतर रहे हैं, अरे यह देवगण कहीं रास्ता तो नहीं भूल गये। पता लगाये । कुछ ही देर के बाद पता चला कि समीपस्थान आनन्दोध्यान में सर्वज्ञ भगवान महावीर पधारे हैं, जिन्हें अभी केवलज्ञान हुआ है और सभी देवतागण महावीर के समवसरण में जा रहे हैं । उनकी अलौकिक आभा का वर्णन नहीं किया जा सकता । प्रशंसा सुनकर इन्द्रभूति तिलमिला उठा । मैं स्वयं जाकर देखता हूँ मेरे से अधिक ज्ञानी कौन हो सकता है । महावीर से शास्त्रार्थ करने के भाव से गया, मैं अभी वहां जाकर उसे परास्त किये देता हूँ । इन्द्रभूति गौतम ने यज्ञोपवीत,पीला चोला आदि बारह विशिष्ट चिन्ह धारण कर 500 शिष्यो के साथ समवसरण की ओर प्रस्थान किया। महावीर के महाप्रतापी अलौकिक ऐश्वर्य को देख कर दंग रह गया । मन ही मन सोचने लगा कि यह कहीं साक्षात् ब्रहमा, विष्णु एवं शंकर तो नहीं । ये अत्यन्त सुकोमल हैं ये विष्णु नहीं हो सकते, क्योंकि विष्णु तो सस्यश्यामल वर्ण वाले है,इनका स्वरुप स्वर्ण के समान मनोहारि है, यह ब्रहमा भी नहीं, क्योंकि ब्रहमा बूढ़ा है और यह जवान, यह कामदेव भी नही हो सकते, वह अशरीरी है। मुझे विश्वास करने के लिए बाध्य होना पढ़ रहा है कि दोष रहित समस्त गुण सम्पन्न अंतिम तीर्थंकर हैं ।महावीर ने कहा- गौतम। तुम्हारे मन में आत्मा के अस्तीत्व के सम्बन्ध में सन्देह है । मैं सर्वज्ञ होने के कारण जीव को

प्रत्यक्ष देख रहा हूँ . प्रभु की दिव्य ध्वनि से न केवल उनके अन्तर्मन के सन्देह ही दूर हुए अपितु अलौकिक उल्लास से ओत-प्रोत हो गए ।

गौतम ने शीश झुकाकर कर कहा-प्रभो मुझे आपके चरणों में पूर्ण आस्था है अजीवन आपके चरणों में रहना चाहता हूँ। कल्याणकारी धर्म में दीक्षा प्रदान कर कृतार्थ कीजिए ।

परम दयालु महावीर ने इन्द्रभूति गौतम को सुखद कार्य करने की अनुज्ञा प्रदान की और गौतम ने अपने 500 शिष्यो को सम्बोधित करते हुए कहा-आयुष्मान् अन्तेवासियो-मुझे प्रभु कृपा से वास्तविक सत्य का बोध हो गया है, अब मैं सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण भगवान से श्रमण दीक्षा अंगीकार कर उनकी शरण ग्रहण करना चाहता हूँ, आप अपनी इच्छानुसार जो अच्छा लगे वह कर सकते है । 500 शिष्यों एकमत कहा हम भी आपके साथ दीक्षित होगें। इन्द्रभूति का संवाद सुनकर अग्निभूति,वायुभूति, आर्य व्यक्त, आर्य सुधर्मा,मण्डित,मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मैतार्य एवं आर्य प्रभास सभी अपने शिष्य मंडली सहित मुंडित होकर निग्रन्थ बन गये । सभी ने चौदहपूर्व का ज्ञान प्राप्त कर गणधर पद पर सुशोभित हुए । प्रभु से प्रश्न पूछ कर उनका उत्तर सुनकर सूत्रों की रचना करते हैं ।

पचास वर्ष की आयु में गौतम ने दीक्षा ग्रहण की और प्रथम दिन से ही चौदह पूर्व के ज्ञाता बन गये । निरन्तर 30 वर्ष भगवान की सेवा में रहे और ग्रामानुग्राम विचरण कर जैन

धर्म की प्रभावना की । जब पावापुरी में कार्तिक कृष्णा अमावस्या को भगवान का निर्वाण हुआ तब आप चिन्तन करते घाति कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया । 12 वर्ष केवलीभव से पृथ्वीमण्डल पर विचरण जिनशासन की प्रभावना की और वीर निर्वाण सं 12 मे अपना अवसान काल निकट जान कर राजगृह के गुणशील चैत्य में संथारा संलेखना कर 92 वर्ष की आयु में सिद्ध-बुद्ध मुक्त हो गये ।

गौतम स्तुति

जय गौतम गणधर, स्वामी जय गौतम गणधर
ऋद्धि सिद्धि के दाता, जन-जन मंगलकार ।।
गोबर ग्राम निवासी, वसुभूति सुत थे ।
पृथ्वी पुत्र प्रतिश्रुत़ शोभा संयम थे ।। 1 ।।
नाम इन्द्रभूति था गोत्र था गौतम ।
था आद्यन्त तुम्हारा, जीवन पावनतम ।। 2
पूर्ण वेद विद्या के अधिकृत पण्डित थे ।
यज्ञ विधि के ब्रह्मा, प्रतिभा मण्डित थे ।। 3
मध्य पावा में प्रभु महावीर आए ।
लिए वाद की इच्छा, तुम जा टकराये ।। 4 ।।
छोड़ वाद का पथ, प्रभु ने उपदेश दिया ।
दूर सभी कर संशय और संक्लेश दिया ।। 5
प्रभु चरणों मे रहकर तप में लीन हुए ।
द्वादशांग वाणी में परम प्रवीण हुए ।। 6 ।।
ज्ञान ध्यान तप संयम विनय वृतिधारी ।

बने लब्धियों के तुम अक्षय भंडारी ।। 7 ।।
पूछ-पूछ कर प्रभु से तुमने ज्ञान लिया ।
धारण कर अर्थों को सूत्र निबद्ध किया ।। 8 ।
हुए प्रभु निर्वाणी तुम केवल ज्ञानी ।
तभी श्रेष्ठ पर्वो में दीपावली मानी ।। 9 ।।
सर्व कर्म क्षय करके था निर्वाण लिया ।
अनन्त सिद्ध श्रेणी में अविचल स्थान लिया ।।
चिन्तामणि सम नाम तुम्हारा प्रातः उठ ध्यावे ।
सर्व विघ्न उपशम कर सुख वैभव पावे ।। 11 ।।

रचयिता भगवन राम प्रशाद जी

आत्मार्थी एवं ईश्वरवादी

विश्व में अनेकों धर्म हैं, सब की मान्यताएं भिन्न हैं, ऐसे ही भारत में अनेक धर्म है जिनमें से प्राचीन धर्म जैन ही माना जाता है उसके बाद वैदिक धर्म भी सनातन धर्म माना जाता है परन्तु दोनों की मान्यताएं अलग-अलग है । जैन धर्म इस चौबीसी के प्रवर्त्तक भगवान ऋषभदेव मानते हैं जो प्रथम तीर्थंकर हुए और अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर हुए । वैदिक परम्परा भी 24 अवतार मानती है इनके धार्मिक विधान जल स्नान,मूर्तिपूजा,यज्ञ एवं बलिप्रथा के आडम्बरों से भरा है और ईश्वरवादी मान्यता है जबकि हमारी संस्कृति आडम्बर हीन आत्मार्थी संस्कृति है । जो अन्यमतावलम्बी जैनधर्म को अर्वाचीन बतलाते है और अपने

धर्म को प्रचीन बतलाकर जैनों को श्रद्धाहीन कहते हैं उन्हे प्रचीन ग्रन्थ वेद, स्मृति और पुराणों के तथ्य को समझना चाहिए जिन्हें झुठलाया नहीं जा सकता ।

ॐ नमो·र्हन्तो ऋषभो वा, ॐ ऋषभं पवित्रम् ।

यजुर्वेद अ 25, मंत्र 16

ऋषभ सर्वश्रेष्ठ पवित्र हैं, अरिहन्त ऋषभ को नमस्कार करता हूँ ।

ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठिताना चतुर्विंशतितीर्थकराणंम् ।

ऋषभादिवद्धर्मानान्तानां , सिद्धानां शरणं प्रपद्ये ।। ऋग्वेद

ऋषभदेव से वर्द्धमान पर्यन्त जो चौबीस तीर्थकर तीन लोक में प्रतिष्ठत हैं,मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूं।

जैन धर्म आत्मा को महत्व देता है और आत्मा आठ कर्मों से लिप्त अनादिकाल से भव भ्रमण कर रही है, कभी मनुष्य गति, कभी देव गति, कभी त्रियञ्च गति और कभी वनस्पति में कर्मानुसार भ्रमण करती आई है और करती रहेगी जब तक आत्मा उपर लपटे आठ कर्मों को क्षय नहीं कर लेती, क्षय करने के पश्चात केवल्यज्ञान की प्राप्ति कर तीन लोक के ज्ञाता त्रिलोकी नाथ हो जाते है और आयुष्य कर्म पूर्ण होने पर सिद्ध बुद्ध मोक्ष गामी हो कर आवगमन से मुक्त हो जाते हैं ।

न कर्तृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं, स्वाभावस्तु प्रवर्त्तते ।।

श्रीमद्भागवत ,अध्याय-5

प्रभु न किसी के कृत्तृत्व को उत्पन्न करता है न सरजता है न फल देता है, यह सब काम स्वभाव से होते हैं । संचित कर्मों के उदय से ही सुख-दुःख का अनुभव होता है, कोई किसी का साथी नहीं । मनुष्य जन्म बड़े पुनः कर्म से मिलता है और उच्च कुल, आर्य क्षेत्र पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का फल है । परसुराम और विश्वामित्र चण्डाल कुल में पैदा हुए और घोर तपस्या से वह विश्व विख्यात ऋषि बने । देव, गुरु, धर्म की अराधना से हम पुनः कर्म् अर्जित कर उच्च गति प्राप्त कर सकते हैं यदि मनुष्य जन्म पा कर भी हम बुरे भाव रखते हैं दुनिया का विनाश अपना स्वार्थ सिद्ध जन्मों-जन्मो तक नर्क में धकेल देगा । यह समझने का प्रयास करें- **हम दुःखी क्यों होते हैं**, अनन्ता जन्मों के भव-भ्रमण में न जाने कौन-कौन से कर्म बन्ध एवं हिंसा कर चुके हैं जिसका भुगतान भी समयसमय पर होता रहता है जिसमें भाव हिंसा हर समय होती रहती है ।

जबकि वैदिक धर्म जग कि उत्पति ईश्वर को मानती है और जब जब धरती पर संकट आता है ईश्वर अवतार ग्रहण कर धरती पर आता है जिससे विश्णु के चौबीस अवतार जिसमें 23 अवतार हो चुके हैं और चौबीसवां भगवान कल्किा के रुप में अवतार ग्रहण करेगें । इन चौबीस अवतारों मे आठवा अवतार ऋषभदेव को मानते है और यह भी मानते है कि ऋषभदेव मोक्ष पधार गये । मोक्ष से जीव कभी मृत्यलोक में पुन्य जन्म नहीं लेता । वह राम जी को और महात्मा

बुद्ध को भी विष्णु जी का अवतार मानती है । वैदिक धर्म में भगवान राक्षसों एवं दैत्यों का संहार करते हैं । जबकि जैन धर्म में सभी तीर्थंकर राजघरानों से सुख स्मृद्धि त्याग कर आत्मा पर लिप्टे कर्मों को क्षय करने के लिए कठिन साधना से आत्मा को निर्मल कर सिद्ध बुद्ध मोक्ष प्राप्त करते है, वह अपने जीवनकाल में न हिंसा करते है, न करवाते हैं और न ही करने वाले की अनुमोदना करते है ।
वैदिक धर्म में यज्ञ की बहुत महत्व देते हैं जिनका उल्लेख वेदों में भी मिलता है। यज्ञ का अर्थ तप भी होता है जिससे अपने शरीर को तपाया जाए और अपने निकृष्ट कर्मों की अहूति दी जाए, परन्त कुछ महत्वाकांक्षियो ने यज्ञ को अग्नि में समग्री डाल कर वातावरण शुद्धि के लिए जानवरों की आहूति देना मान लिया है। भगवान विष्णु को बुद्ध का अवतार भी मानते हैं कि भगवान बुद्ध ने यज्ञों का विरोध किया । अब यह शंका पैदा होती है कि भगवान विष्णु कैसे यज्ञ में जानवरों की अहूति देना मान सकते हैं । 16 वां अवतार विष्णु जी का हयग्रीव अवतार मानते हैं क्योंकि ब्रह्मा जी के वेद राक्षस चुराकर ले गये ।ब्रह्मा जी का ज्ञान श्रुतज्ञान था जिसको कोई चुरा नहीं सकता, इसका यह भी अर्थ निकाला जा सकता है कि ब्रह्मा जी के बनाए हुए वेदों को कुछ महत्वाकांक्षियो (राक्षसों) ने उनका स्वरुप ही बदल दिया । राक्षस कौन-रावण को राक्षस कहा जाता है जब कि वह शिव जी का अनन्य भक्त और उन की तपस्या कर शक्ति प्राप्त की, सीता जी का अपहरण किया परन्तु कोई

अनाचार नहीं किया। जबकि आज के राक्षस जिनके घर में भी मां, बहन,बेटियां होने के बावजूद देश की बेटियों से अनाचार करते हैं फिर उनको जला देते हैं या मार देते हैं फिर भी निर्दोष होने की याचना करते हैं । सृष्टी आत्मार्थी है इसको बनाने वाला कोई ईश्वर नहीं यह स्वचलित प्राक्रिया है।.....स्वतन्त्र जैन जालन्धर

आचार्य सुधर्मा

श्रमण भगवान महावीर के परिनिर्वाण के पश्चात् संवत के प्रारम्भ में अर्थात् शक सं 605 वर्ष पूर्व कार्तिक शुक्ला 1 में चतुर्विद संघ ने आर्य सुधर्मा को प्रथम पट्टधर के रुप में नियुक्त किया । आर्य सुधर्मा का जन्म ईसा से 607 वर्ष पूर्व विदेह प्रदेश के कोल्लाग नामक ग्राम में उत्तराफाल्गुणी नक्षत्र में हुआ । जात से गोत्रिय ब्राह्मण आर्य धम्मिल की पत्नी भद्दिला की कुक्षि से हुआ । धम्मिल वेद-वेदांग के लब्धिप्रतिष्ठ विद्वान थे । सुधर्मा को चारों वेदों का ज्ञान दिया गया । यज्ञानुष्ठानादि से विपुल अर्थ की उपलब्धि होती रही । उनकी सेवा में 500 शिष्य विद्यमान रहे । दीक्षा के समय इनकी आयु 50 वर्ष की थी निरन्तर तप संयम की अराधना करते 30 वर्ष तक भगवान महावीर की सेवा में रहे . गौतम के निर्वाण के बाद केवलज्ञान प्राप्त किया । 12 वर्ष तक छद्मास्थाचर्या में संघनायक रहे और 8 वर्ष तक केवली रुप में, कुल मिलाकर 20 वर्ष संघ की सेवा की और इनका शिष्य जम्बूकुमार के साथ प्रश्न-उत्तर से

प्रभु वीर की वाणी को आगमों का रुप दिया । अन्तिम समय एक मास का संथारा कर 100 वर्ष की आयु में देह त्याग किया और आर्य जम्बू को अपना उत्तराधिकारी घोषित द्वतिय आचार्य संघ संचालन का दायित्व दिया

श्री महावीराय नमः

वीर स्तुति महाश्रमण भगवान महावीर के पञ्चम गणधर आर्य सुधर्मा स्वामी ने द्वितीय अंग सूत्रकृतांग के छटे अध्ययन में महावीर भगवान की स्तूति की है जो प्राकृत भाषा में है जिसका हम उच्चारण भी शुद्ध नहीं कर सकते और नां ही उसका भावर्थ समझते हैं । पढ़ने और समझने के लिए भावर्थ उपाध्याय श्री अमर मुनि जी महाराज वीरायतन द्वारा रचित किया गया प्रस्तुत कर रहां हूँ । महश्रमण भगवान महावीर की प्रातः प्रार्थना एवं गुण कीर्तन के रुप में भावर्थ वीस-स्तुति अति उपयोगी है ।

- आर्य जम्बूस्वामी ने गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामी गणधर से पूछा कि भगवन्! मुझसे प्रायः श्रमण-साधु, ब्राह्मण,गृहस्थ एवं बौद्ध आदि अन्य मतों के मानने वाले महापुरुष प्रश्न किया करते हैं कि जिसने अपने निर्मल ज्ञान के द्वारा अच्छी तरह स्वतन्त्र रुप में निश्चय कर, विश्व को पूर्ण रुप से कल्याण करने वाल अनुपम धर्म (अहिंसा) का कथन किया है, वह महापुरुष कौन है ?कैसा है?
- आर्य जम्बूस्वामी ने गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामी गणधर से पुनः प्रार्थना की कि-गुरुदेव! ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर

के सम्बन्ध में आप सब अच्छी तरह जानते हैं । आप यह बताने की कृपालता करे कि भगवान महावीर का ज्ञान कैसा था, दर्शन कैसा था और शील आचार कैसा था ? आपने जैसा सुना और निश्चय किया हो तदनुसार बताने की कृपा करें।

- आर्य जम्बूस्वामी के प्रश्न पर गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामी गणधर ने उत्तर दिया- भगवान महावीर संसारी जीवों के दुःखों के वास्तविक स्वरूप को जानते थे, क्योंकि उन्होंने उस कर्मविषाकजन्य दुःख को दूर करने के लिए यथार्थ उपदेश दिया है । आत्मा के सच्चिदानन्दमय सत्यस्वरूप के दृष्टा थे । कर्मरूपी कुश को उखाड़ फैंकने में कुशल थे,महान ऋषि थे, अनन्त पदार्थों के ज्ञाता-द्रष्टा थे और अक्षय यश वाले थे । भगवान का त्यागमय जीवन जनता की आँखो के सामने स्पष्ट खुला हुआ था । हितअहित अच्छे-बुरे मार्ग के दिखाने वाले थे, भगवान की महत्ता जानने के लिए उनके बताए हुए जन-कल्याणकारी धर्म को तथा संयम की अखण्ड दृढ़ता को देखना चाहिए ।
- भगवान महावीर ने ऊपर,नीचे और तिरछे तीनों लोकों में जो त्रस और स्थावर जीव हैं ,सबको द्रव्य की दृष्टि से,नित्य और पर्याय की दृष्टि से अनित्य बताया है । अतएव भगवान महावीर का यह अनेकान्तवाद की मुद्रा से श्रेष्ठ धर्म अहिंसा संसार सागर में डूबते हुए असहाय

प्राणियो को समुन्द्र में द्वीप-टापू की तरह समानभाव से आश्रय देने वाला है।

- भगवान महावीर त्रिकालवर्ती सब पदार्थों के ज्ञाता और द्रष्टा थे, काम-क्रोधादि अन्तरंग शत्रुओं को जीतकर केवलज्ञानी बने थे । निर्दोष चरित्र का पालन करते थे, अटल वीर पुरुष थे, अपने आत्म स्वरुप में स्थिर भाव में लीन थे अर्थात् निर्विकार थे लोक में सबसे उत्कृष्ट अध्यात्म विद्या के पारगामी थे, सब प्रकार से परिग्रह के त्यागी थे, निर्भय थे सदा के लिए मृत्यु पर विजय प्राप्त कर अजर-अमर हो गये थे । पुनर्जन्म के लिए आयुष् बन्द नहीं किया ।

भगवान महावीर की प्रज्ञा विश्व का मंगल करने वाली थी। उनका विहार सब प्रकार के सांसारिक प्रतिबन्धो से रहित था । वे संसार सागर को तैरने वाले थे, सब प्रकार के उपसर्गों और परिषहों को समभाव से सहन करने में धीर, अनन्त पदार्थों के ज्ञाता, सूर्य के समान अखण्ड तेजस्वी और वैरोचन इन्द्र अथवा प्रचण्ड वैरोचन अग्नि के समान अज्ञान, अन्धकार को नष्ट कर ज्ञान का प्रकाश करने वाले थे।

- भगवान महावीर ने पूर्व तीर्थंकरो भगवान ऋषभ देव आदि द्वारा प्रचलित अहिंसा धर्म का पुनरुद्धार किया था वह मननशील विलक्षण ज्ञानी थे . स्वर्ग लोक में जिस तरह असंख्य देवताओं का नेतृत्व इन्द्र करता है

उसी प्रकार वीर प्रभु भी अपने युग के सर्वप्रधान धर्म के नेता थे । धर्म साधको के पथ प्रदर्शक थे ।

- भगवान अनुपम है, संसार में कोई भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता वह पूर्ण शुद्ध ज्ञान के अक्षय सागर थे। चार कषायों से सर्वथा रहित थे । वासनाजन्य कर्मों के बन्धन से मुक्त थे । इन्द्र के समान महा तेजस्वी एवं महान प्रभावशाली थे ।
- वीर्यन्तराय कर्म के क्षय करने से भगवान महावीर अनन्त शक्ति वाले थे । जिस तरह सुमेरू पर्वत संसार के सब पर्वतों मे श्रेष्ठ है,स्वर्गवासी देवताओं के लिए हर्षोत्पादक है अनेकानेक मनोहर गुणों से युक्त है उसी प्रकार भगवान महावीर भी संसार में सब से श्रेष्ठ, प्राणिमात्र के लिए आनन्दकारी एवं सत्यशील अनन्त गुणों के अक्षय निधि थे ।
- सुमेरू पर्वत ऊर्ध्व-ऊँचा, अधःनीचा और मध्य तीनों लोक में अवस्थित है भगवान महावीर का प्रभाव भी तीन लोक में व्याप्त था । सम्यक ज्ञान,दर्शन और चारित्र रुप रत्न-त्रय से युक्त थे ।
- सुमेरू पर्वत ऊपर आकाश को नीचे भूमि को स्पर्श करके खड़ा हुआ है. सूर्य,चन्द्र आदि ग्रहगण अविराम गति से चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं। स्वर्ण के समान सुन्दर कान्ति है और नन्दन आदि वनों से सुशोभित है। साधारण देवताओं की तो बात ही क्या, स्वयं इन्द्र

भी आकर सुमेरू पर्वत पर विश्रान्ति सुख प्राप्त करते है।

- सुमेरू पर्वत की कन्दराओं में से देवताओं का मधुर संगीत स्वर दूस्दूर तक गूँजता रहता है। तपाये हुए स्वर्ण जैसी उज्ज्वल कान्ति बड़ी मनोहर लगती है । सुमेरू सब पर्वतों में श्रेष्ठ है और ऊँची-नीची मेखलाओ के कारण दुर्गम है । मंगल ग्रह के समान उज्ज्वल कान्ति वाला है ।
- सुमेरू पर्वत ठीक भूमण्डल के बीच में है, वह पर्वतों का राजा, सूर्य के सामान अतीव दिव्य कान्ति वाला है, नाना प्रकार के रत्नों के कारण विचित्र वर्णों की प्रभा से युक्त है सब ओर से उज्ज्वल किरणें निकलती है जो दश दिशाओं को अपने अलोक से उद्भासित करती है ।
- जिस प्रकार संसार में पर्वतों का राजा सुमेरू पर्वत यशस्वी माना गया है, उसी प्रकार भगवान महावीर भी तीन लोक में महातिमहान यशस्वी थे। धर्म साधना में अतीव उग्र श्रम करने वाले ज्ञातपुत्र महावीर जाति, यश,दर्शन,ज्ञान और शील आदि सद्गुणों में सब से श्रेष्ठ थे ।
- जिस प्रकार दीर्घाकार पर्वतों मे निषध और वलयाकार पर्वतों में रुचक पर्वत श्रेष्ठ माना गया है, उसी प्रकार अखिल चराचर विश्व के ज्ञाता अनन्त ज्ञानी भगवान महावीर को त्यागी ऋषि मुनियों में श्रेष्ठ कहा गया है।

- भगवान महावीर ने सर्व-प्रधान अहिंसा धर्म का संसार को उपदेश देकर, सब ध्यानों में श्रेष्ठ शुक्ल ध्यान की साधना की । भगवान का शुक्ल-ध्यान(आत्म चिंतन की शुद्ध धारा) अर्जुन स्वर्ण, जल-फेन,शंख और चन्द्रमा के समान पूर्ण रुप से शुक्ल निर्मल था ।
- भगवान महावीर ने सब कर्मों को सदाकाल के लिए समूल नष्ट करके लोक के अग्रभाग में स्थित सर्व प्रधान, सादि अनन्त,उत्कृष्ट मोक्ष गति को प्राप्त किया। भगवान ने सिद्ध पद प्राप्ति की अन्य किसी पर भरोसा न कर अपने ही प्रयत्न पर भरोसा किया फलतः अपने ज्ञान,दर्शन एवं शील के द्वारा कर्म बन्धन से मुक्ति प्राप्त की ।
- वृक्षों में शाल्मली वृक्ष श्रेष्ठ है जिस पर सुपर्णकुमार जाति के भवनपति देव क्रीड़ा किया करते हैं । संसार में समस्त सुंदर वनों में नन्दन वन श्रेष्ठ है, जो सुमेरू पर्वत पर अवस्थित है। अनन्त ज्ञानी भगवान महावीर भा इसी प्रकार ज्ञान और शील में सर्वश्रेष्ठ महापुरुष थे।
- जिस प्रकार शब्दों में मेघ की गर्जना का शब्द अनुपम है, तारा मण्डल में चन्द्रमा महानुभाव है, सुगन्धित वस्तुओं में मलय अर्थात् बावना चन्दन श्रेष्ठ है उसी प्रकार भुमण्डल के समस्त मुनियों में लोक और

परलोक की वासना से सर्वथा मुक्त भगवान महावीर श्रेष्ठ थे ।

- जिस प्रकार सब समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र प्रधान है, नागकुमार जाति के भवनपति देवों में उनका इन्द्र-धरणेन्द्र प्रधान है, सब रसों में ईख का रस मधुर रस प्रधान है, उसी प्रकार तपश्चरण की साधना में भगवान महावीर सर्व-प्रधान थे ।
- जिस प्रकार हाथियों में इन्द्र का ऐरावत हाथी मुख्य है, पशुओं में सिंह मुख्य है नदियों में गंगा नदी मुख्य है, पक्षियों में वेणुदेव गरुढ़ पक्षी मुख्य है, उसी प्रकार मोक्ष मार्ग के उपदेशक नेताओं में ज्ञातपुत्र भगवान महावीर मुख्य थे ।
- जिस प्रकार वीर योद्धाओं में वासुदेव महान हैं, फूलों में अरविन्द कमल महान है, क्षत्रियों में चक्रवर्ती महान है, उसी प्रकार ऋषियों में वर्द्धमान भगवान महावीर सबसे महान थे ।
- जिस प्रकार सब दानों मे अभयदान उत्तम है, सत्यों में पाप-रहित दयामय सत्य उत्तम है, तपों में ब्रह्मचर्य तप उत्तम है, उसी प्रकार तीन लोक में ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर सब से उत्तम थे ।
- जिस प्रकार सुखमय जीवन की सबसे बड़ी आयु में सर्वार्थ सिद्ध नामक छब्बीसवे देव लोक के देवताओं की आयु श्रेष्ठ है, सब सभाओं में प्रथम देवलोक के सोधर्म

इन्द्र की सुधर्मा सभा श्रेष्ठ है, सब धर्मों में निर्वाण की ही श्रेष्ठता है उसी प्रकार ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर सब ज्ञानियों में से उत्तम सर्वश्रेष्ठ महापुरुष ज्ञानी थे ।

- ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर पृथ्वी के समान सब जीवों के अधारभूत थे । पृथ्वी के समान भयंकर उपसर्ग और परिषहों कष्टों को समभाव से सहन करने वाले कर्मवीर थे . कर्ममल का नाश करने वाले थे । आशा तृष्णा से सर्वथा रहित थे । भगवान ने कभी किसी प्रकार के धन-धान्य का संग्रह नहीं किया, उनका ज्ञान निरन्तर उपयोग सहित था । महाभयंकर संसार सागर से तैर कर वीर प्रभु ने अभयंकर एवं अनन्त ज्ञानी का सर्वोत्कृष्ट पद प्राप्त किया ।
- संसार में सर्वश्रेष्ठ महार्षि भगवान महावीर क्रोध,मान,माया और लोभ आदि अन्तरंग दोषों का पूर्णतय त्याग कर अर्हन्त बन गये । भगवान ने कभी पापाचरण स्वयं किया न किसी दूसरे से करवाया न किसी करनेवाले का अनुमोदन किया ।
- ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर ने क्रियावाद, अक्रियवाद,विनयवाद, अज्ञानवाद आदि सब प्रकार के मत-मतान्तरो को पहले स्वयं जाना फिर जनता को सत्य का वास्तविक मर्म समझाया । भगवान ज्ञान के साथ संयम में भी उत्कृष्ट साधक उत्तम थे । आपने

शुद्ध संयम का जीवन पर्यन्त सर्वथा दोषरहित परिपालन किया ।

- ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर त्याग मार्ग में अत्यन्त कठोर साधक थे । स्त्री का स्पर्श तक भी नहीं करते थे । न ही रात्री भोजन करते थे। सांसारिक दुःखो का समूल क्षय करने के लिए कठोर तपश्चरण किया था। लोक और परलोक के रहस्य को जान कर भगवान ने समस्त प्रकार की लोक-परलोक वासनाओं का पूर्ण परित्याग कर दिया।
- श्री सुधर्मा स्वामी गणधर श्री जम्बूस्वामी से वीर-स्तूति का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि जो साधक राग-द्वेष के विजेता भगवान महावीर के द्वारा सम्यक् प्रकार के कहे हुए शब्द और अर्थ दोनों ही दृष्टियों में सर्वथा शुद्ध धर्म प्रवचन पर श्रद्धा रखेंगे, वे जन्म-मरण के बन्धन से रहित होकर सिद्ध पद प्राप्त करेंगें अथवा देवताओ के राजा इन्द्र बनेंगें।

जम्बू स्वामी

श्रमण भगवान महावीर के शासन में आर्य जम्बू एक महान समर्थ आचार्य हुए हैं । इनके त्याग की महत्ता प्रकट करने के लिए संसार में कोई उपमा उपल्ब्ध नहीं होती, ठीक उसी प्रकार शरीर सम्पदा, वैराग्य,तप, गुरु भक्ति, सरलता और आध्यात्मिक ज्ञान का चित्रण करने के लिए कोई शब्दावली

नहीं मिलती । वर्तमान अवसर्पणि काल भरतक्षेत्र में अन्तिम मुक्तिगामी केवली माने गये हैं ।

राजगृह नगर में ऋषभदत्त नाम के एक समृद्ध रहते थे इनके पास अपने पूर्वों की विपुल सम्पति थी, वह द्यालु,दृढ़ प्रतिज्ञ, दानशील, दक्ष, विनयी और विद्वान थे । पत्नि का नाम धारिणी निर्मल स्वभाव वाली जिन शासन के प्रति आस्थावान गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए आंगन सुना रहने से चिन्तित रहते थे, एक दिन आर्य सुधर्मा के दर्शानार्थ गये वहां जसमित्र नाम के श्रावक मिले, उन्होंने ने अपने निमितिक ज्ञान से कहा-आप शीघ्र ही पुत्रवती होगी और वह अन्तिम केवली होगा । धारिणी ने जम्बूद्वीपाधिपति देव के नाम की अराधना 108 आयिम्बल किये। तपस्या के ठीक सातवें दिन जिद्युन्माली देव ब्रह्मलोक से च्यवन कर धारिणी के गर्भ में अवतरित हुए। रात्री में स्वप्न में केसरी सिंह देखा। गर्भकाल पूर्ण होने पर केसर के समान तेजस्वी पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। जम्बू नामकरण किया, युवा होने पर सुयोग्य शिक्षा प्राप्त कर माता-पिता ने विवाह के लिये बाध्य किया परन्तु जम्बू के मन में वैराग्य हिलोरे ले रहा था। आर्य सुधर्मा के प्रवचन सुन कर वैराग्य और परिपक्व हो गया और आर्य सुधर्मा ने जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी रहने का व्रत करवा दिया, फिर भी माता-पिता ने आठ कन्याओं के साथ रिश्ता कर दिया। आठों कन्याओं को मालूम हो गया कि जम्बू घर में ही

वैरागी है । जम्बू ने कहा- अम्बे-यदि आप की इच्छा है तो मैं पूर्ण कर देता हूँ लेकिन अगले दिन ही मुझे दीक्षा से रोकना नहीं होगा। विवाह में आया दहेज आंगन मे ही पड़ा था । निशा के आगमन पर जम्बू कुमार बहूभूषणों से अलंकृित आठों पत्नियों के साथ शयन कक्ष में प्रवेश हुये । सभी पत्नियां अपने स्वामी के चरणों में बैठ गई और अपनी कमनीय. दृष्टि से निहार रहीं हैं। जम्बूकुमार ने अपनी आठों पत्नियो को सम्बोधित करते हुए कहा- भव्यात्माओ आपको विदित ही है कि प्रातः मैं प्रव्रजित होकर मुक्ति पथ का पथिक होने जा रहा हूँ, मैं यह स्पष्ट कर देता हूँ कि सांसारिक सुखों से मुझे मोह नहीं। उधर प्रभव चोर अपने 500 साथियों के साथ आंगन में पड़ी धनराशी प्राप्त करने के लिए चोरी के भाव से पहुँच गया उसके पास विद्या थी कि ताले स्वयं खुल जाए और मालिक गहरी नींद सो जाए। जम्बू जब पहुंचा दीवार के साथ कान लगाए सुन रहा है जबकि 500 चोर घर में आये हुए महमानों के आभूषण उतार कर इकट्टे कर रहे हैं तब जम्बू ने उन सब के पांव स्तम्बित कर दिए और कहने लगा- अये तस्करों, तुम हमारे घर आए हुए महमानों की सम्पति को कैसे चुरा सकते हो । प्रभव हैरान कि मेरी विद्या काम नही कर रही और हम सब जम गये हैं हिल नहीं सकते और इधर जम्बू अपनी पत्नियों से सांसारिक सुखों को तज कर वैराग्य की बाते कर रहा है। धन्य है सम्पति और परिवार का त्याग कर प्रव्रजित

होने जा रहा है। प्रभव ने जम्बूकुमार को क्हा- मैं जयपुर नरेश विन्यधयराज का ज्येष्थ पुत्र हूँ मैं आपसे मित्रता करना चाहता हूँ , आप मुझे स्तांभिनी और मोचनी विद्याएं सिखाकर मुझ से अवस्थापिनी और तालोद्घाटिनी विद्याएं प्राप्त कर ले । जम्बू कुमार मैं तो प्रातः ही परिवार एवं समस्त सुखों का त्याग कर प्रव्रजय धारण करने जा रहा हूँ, मुझे इन पापकारी विद्याओं से कोई लाभ नहीं । प्रभव का मन पिघल गया और अपने पापों का प्रायश्चित कर निवेदन करने लगा मैं भी आपके साथ ही अपने 500 साथियों के साथ प्रव्रजित होने का भाव रखता हूँ जिसे जम्बू ने स्वीकार कर, प्रातः अपने माता पिता और आठों पत्नियों और उनके माता-पिता के साथ 527 भव्य. आत्माओं ने सुधर्मा स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की ।

श्रमण धर्म ग्रहण करने के पश्चात् अपने श्रुत आराध्य सुधर्मा की सेवा में रहकर श्रुताराधन करने लगे, कठोर तपाराधन विशुद्ध श्रमणाचार का पालन करते हुए आगमों के अध्ययन में निरत रहने लगे । जम्बू अपनी मन की शंका से सुधर्मा को प्रश्न कर आर्य. सुधर्मा उनका उत्तर देते जो आज हमें आगमों के रुप में उपलब्ध है। थोड़े समय में ही आर्य जम्बू ने द्वादशांगी रुप अगाध श्रुतसागर का अर्थ व्यवस्था विस्तारादि सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर केवलज्ञान प्राप्त किया। आप 44 वर्ष तक आचार्य पद पर रह कर धर्म प्रभावना की। वीर निर्वाण सं 64 में 80 वर्ष

की आयु में निर्वाण पद पाया और अन्तिम केवली हुए । निर्वाण से पूर्व प्रभव को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

श्रुतकेवली काल

(वीर निर्वाण सं 64 से 170)

आचार्य प्रभव स्वामी

आचार्यकाल (वीर निर्वाण सं 64 से 75)

आचार्य स्वयंभव स्वामी

आचार्यकाल (वीर निर्वाण सं 75 से 98)

- **आचार्य यशोभद्र स्वामी**

आचार्यकाल (वीर निर्वाण सं 98 से 148)

- **आचार्य संभूत विजय स्वामी**

आचार्यकाल (वीर निर्वाण सं 148 से 156)

आचार्य भद्रबाहुस्वामी

आचार्यकाल (वीर निर्वाण सं 156 से 170)

आचार्य प्रभव स्वामी

दीक्षा के समय आर्य प्रभव की आयु 30 वर्ष की थी। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात आर्य जम्बू से 11 अंगों एवं 14 पूर्वों का सम्यक् रुप से अध्ययन किया और अनेक प्रकार की कठोर तपश्चर्याएं की, तपस्या के प्रचण्ड अग्नि में अपने कर्मसमूह कों ईंधन की तरह जलाने लगे । 64 वर्ष तक आर्य जम्बू की सेवा में रत रहे । अपनी आत्मा के उद्धार के साथ-साथ प्रभवस्वामी ने युगप्रधान आचार्य के रुप में जिनशासन की निष्ठा और लगन के साथ महती सेवा

एवं प्रभावना की । उत्तराधिकारी के लिए चिन्तन करते हुए अपने धर्मसंघ के सभी साधुओं पर ध्यान दिया पर उनमें से कोई भी उन्हे अभिलाषा पूर्ण नहीं जचा । तब उन्हों ने अपने साधुसंघ से ध्यान हटाकर अन्य किसी योग्य व्यक्ति को खोजने के लिए श्रुतज्ञान का उपयोग लगाया, तो ज्ञानबल से देखा कि राजगृह में वत्स गोत्रीय ब्राह्मण सय्यंभव भट्ट, जो कि उन दिनों यज्ञानुष्ठान में निरत हैं, वह भगवान महावीर के धर्मसंघ का संचालन में पूर्णरूपेण समर्थ हैं । अगले ही दिन आर्य प्रभव अपने साधुओं के साथ विहार करते हुए राजगृह नगर पधारे । वहां पहुँचने पर अपने दो साधुओं को आदेश दिया- श्रमणों तुम दोनों सय्यंभव के यज्ञ में भिक्षार्थ जाओ, जब वहां के ब्राह्मण तुमे भिक्षा देने से इंकार कर दे तो तुम उच्च स्वर से यह श्लोक सुना कर लौट आना ।

श्लोक-" **अहो ! कष्टमहो कष्टं,तत्वं विज्ञायते न हि।"**

अर्थात- अहो ! महान दुःख की बात है, बड़े शोक का विषय है कि सही तत्वं (परमार्थ) को नहीं समझ पा रहे । इस प्रकार दो साधु भिक्षार्थ यज्ञमंडप में पहुँच कर भिक्षार्थ खड़े रहे । वहाँ पर यज्ञ हेतु उपस्थित विद्वान ब्राह्मणों ने उन दोनों साधुओं को भिक्षा देने का निषेध कर दिया। वह दोनों गुरु आज्ञानुसार श्लोक का उच्चारण कर लौट पड़े । यज्ञनुष्ठान करते संय्यभव भट्ट ने जब सुना तो वह ईहापोह करने लगा । वह जानता था कि जैन श्रमण कभी असत्य

भाषण नहीं देते। संय्यभव के अन्तर्मन में उठे अनेक प्रश्न और शंकाए ने झकझोरना प्रारम्भ कर दिया। तब उसने यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले अपने उपाध्याय से प्रश्न किया- वास्तव में तत्व का सही रूप क्या है।उपाध्याय ने उत्तर दिया- यजमान ! सही ज्ञान का सार यही है कि वेद स्वर्ग और मोक्ष देने वाला है । जिन्होंने तत्वज्ञान को जान लिया है वह कहते है कि वेदों के अतिरिक्त और कोई तत्व नहीं ।

संय्यभव क्रुद्ध होकर बोला- सच सच बताओ कि तत्व क्या है, अन्यथा मैं तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दूँगा । यह कह कर संय्यभव ने अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली । प्राण रक्षा के लिए बोले-अर्हत भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म ही वास्तविक तत्व और सही धर्म है । इसका सही उपदेश यहां विराजित आचार्य प्रभव से तुम्हें प्राप्त करना चाहिए ।

सच्ची बात सुन कर संय्यभव बहुत प्रसन्न हुआ और सभी यज्ञोपकरण और यज्ञ के लिए एकत्रित समग्री उपाध्याय को भेंट कर स्वयं आचार्य प्रभव की खोज करते हुए आचार्य प्रभव की सेवा में जा पहुँचा, विधिवत् चरणवन्दना कर मोक्षदायक धर्म उपदेश की प्रार्थना की ।

आचार्य प्रभव ने सम्यक्त्व सहित अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रुप धर्म की महिमा समझाते हुए संय्यभव से कहा वास्तविक तत्व ही सही ज्ञान और सही

धर्म है । इस वीतराग की साधना करने वाला जन्म-मरण के बन्धनों से सदा-सर्वदा के लिए छुटकारा पा कर अक्षय सुख की प्राप्ति में सफल होता है ।शुद्ध मार्ग का उपदेश सुन संय्यभव भट्ट ने तत्काल प्रभवस्वामी के पास दीक्षा ग्रहण कर ली ।

आचार्य सय्यंभव स्वामी

आचार्य प्रभव की खोज करते हुए आचार्य प्रभव की सेवा में जा पहुँचा, विधिवत् चरणवन्दना कर मोक्षदायक धर्म उपदेश की प्रार्थना की ।

आचार्य प्रभव ने सम्सक्त्व सहित अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रुप धर्म की महिमा समझाते हुए संय्यभव से कहा वास्तविक तत्व ही सही ज्ञान और सही धर्म है । इस वीतराग की साधना करने वाला जन्म-मरण के बन्धनों से सदा-सर्वदा के लिए छुटकारा पा कर अक्षय सुख की प्राप्ति में सफल होता है ।शुद्ध मार्ग का उपदेश सुन संय्यभव भट्ट ने तत्काल प्रभवस्वामी के पास दीक्षा ग्रहण कर ली । चतुर्दश पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर महा विद्वान आचार्य हुए और जिनशासन की महती प्रभावना की । जिस समय संय्यभव ने दीक्षा ग्रहण की उस समय उनकी आयु 28 वर्ष की थी और उनकी पत्नी गर्भवती थी। समाज को बहुत अचम्भा हुआ कि नारी को अकेला असहाय छोड़ गया। ग्राम की कुछ महिलाओं ने पूछा तेरी

कुक्षी में भट्ट का कुलप्रदीप है, लज्जा से उसने एक शब्द में उत्तर दिया मणगं (मनक) जिसका अर्थ हां कुछ है । गर्भ काल पूर्ण होने पर पुत्ररत्न को जन्म दिया। लालन-पालन करते हुए जब मनंक आठ वर्य का हो गया तो साथियो के साथ खेल-कूद और अध्ययन करने लगा । एक दिन मनक ने माता से पूछा- मैं ने आजतक अपने पिता को नहीं देखा, वह कौन है, कहाँ हैं । माता-वत्स ! जब तुम मेरे गर्भ में थे तो साधु उनको ले गये, वहीं उन्होंने श्रमण धर्म दीक्षा अंगीकार कर ली फिर वह कभी घर नहीं आए । मणक पिता को मिलने की लालसा से राजगृह नगरी पहुंच गया, नगर के बाहर शौच से निवृत हो एक श्रमण दिखाई दिए, पास जाकर विधिवत् वन्दना की । श्रमण ने पूछा बेटा तुम कहा से आए हो, तुम कौन हो, क्या उद्देश्य है । मणगं-देव मैं वत्स गोत्रीय ब्राह्मण सय्यंभव भट्ट का पुत्र हूँ उनको मिलने के लिए आया हूँ, अब वह श्रमण धर्म का पालन करते है । सय्यंभव का मन हिल गया और कहने लगा-बेटा मैं उन्हें जानता हूँ, मेरे साथ चल, तुम मुझे ही मान लो और मेरे पास प्रवज्या ग्रहण कर लो । बालक मणगं हर्ष,विभोर होकर अपने पिता के चरणों में प्रार्थना करने लगा- भगवन मुझे शीघ्र ही दीक्षा प्रदान कीजिए अब मैं पृथक नहीं रहूँगा । बालक की भावना देखकर आचार्य सय्यंभव ने उसे सम्पूर्ण सावध्य-विरतिरूप श्रमणाचार्य की दीक्षा दी । माणगं बालमुनि के रुप में मुक्तिपथ का सच्चा

पथिक बना । जब मणगं को दीक्षा देकर आचार्य श्री जी की कृपा से अल्प समय में ज्ञान और क्रिया अराधक बन गया । अंतिम समय. निकट जानकर उसकी अन्तिम आराधना के लिए आलोचनादि आवश्यक रीति से करवाई । बालक मुनि मणगं 6 मास की आराधना पूर्ण कर समाधिपूर्वक देहत्याग किया। तो आचार्य जी को मानसिक खेद से आँखों में अश्रुकण निकल पड़े । यशोभद्र और अन्य मुनियों ने आचार्य जी के अश्रबिन्दुओं को देखा तो आश्चर्य चकित हो गये। भगवन हमारी शंका दूर कीजिए आप जैसे परमविरांगी और शोकमुक्त महामुनि के मन में कोई खेद तो होगा ।

मुनिसंघ की बात सुनकर अपने पिताःपुत्र सम्बन्ध का रहस्य प्रकट किया।इसलिए मेरा मन भर आया कि कुछ आयु बल पाकर साधना पूर्ण कर लेता । भगवन आपने इतने समय तक हमें अज्ञान क्यों रखा, हम भी गुरु पुत्र की सेवा कर पाते । आचार्य श्री- यदि आप को ज्ञात हो जाता तो आप लोग मणगं ऋषि से सेवा नहीं करवाते ।

सय्यंवाचार्य 11 वर्ष तक सामान्य साधु रहे और 23 वर्ष तक युगप्रधानाचार्य रह कर महावीर शासन की प्रभावना की, अन्तिम समय. निकट जानकर यशोभद्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया । अणनशन एवं समाधिपूर्वक 62 वर्ष की आयु में वीर निर्वाण सं 98 में देहत्याग किया।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ।1।
धर्म उत्कृष्ट मंगल है,अहिंसा,संयम और तप जैसे धर्म को देवता भी नमस्कार करते ।
जहा दुमस्स पुप्फेसुभमरो आवियाइ रसं ।
ण य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ।2।
जिस प्रकार वृक्ष के फूलों पर से भंवरा रस प्राप्त करता है और फूलों को भी कष्ट नहीं देता और वह अपनी आत्मा को भी तृप्त कर लेता है ।
एमेए समणा मुत्ता जे लोए संति साहुणो ।
विहंगमा व पुप्फेसु दाणभत्तेसणे रया ।3।
उसी प्रकार जो लोक में आभ्यंतर एवं बाह्य परिग्रह से मुक्त श्रमण, साधु-सन्त वह फूलों पर बैठे भंवरे के सम्मान हैं, जो दानभक्त की एषणा में रत रहते हैं ।
वयं च वित्तिं लाब्बामो,ण य कोइ उवहम्मइ ।
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा ।4।
हम भी वैसी वृत्ति प्राप्त करेगें जिसे किसी को कोई कष्ट नां हो, जैसे फूलों से भवरा रस प्राप्त करता है।
महुगारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ।
णाणापिंडरया दंता, तेन वुच्चंति साहुणो ।5।
जो मधुकर (भंवरे) के समान हैं, बुद्ध हैं अनाश्रित होता है, अनेक घरों की भिक्षा वृत्ति में रत रहता हुआ आत्मा का दमन करने वाले है, वह ही भिक्षु कहलाते हैं ।

श्रुतकेवली आचार्य सय्यम्भवाचार्य

आचार्य यशोभद्र

आचार्य सय्यंवाचार्य के पश्चात् आचार्य यशोभद्र पंचम पट्टधर हुए आपका जन्म तुंगियायन गोत्रीय याज्ञिक ब्राह्मण परिवार मं हुआ । अपने अध्ययन काल पूर्ण कर जब तरुण अवस्था में प्रवेश किया तब सहसा आपको आचार्य सय्यंवाचार्य के सत्संग का सुयोग मिला । आचार्य सय्यंवाचार्य की त्यागभरी वाणी सुन कर यशोभद्र की सोई हुई आत्मा जाग उठी । 22 वर्ष की आयु में मोह-माया त्याग कर आचार्य सय्यंवाचार्य के आगे दीक्षित हो निग्रन्थ मुनि बन गये । निरन्तर 14 वर्ष गुरु सेवा में रह कर ज्ञान-ध्यान की साधना करते हुए चतुर्दश पूर्वों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर अनेक प्रकार की तपस्या कर संयम धर्म की पालना की । वीर निर्वाण सं 98 में आचार्य सय्यंवाचार्य के स्वर्गरोहण के पश्चात युगप्रधान आचार्य पद पर आसीन हुए। 50 वर्ष तक आचार्य पद पर रहे और महावीर शासन की अनुपम सेवा करते हुए वीतराग मार्ग का प्रचार एवं प्रसार किया। आचार्य यशोभद्र ने अपने आचार्यकाल में प्रभावी उपदेशों से बडे-बड़े याज्ञिक विद्वानों को प्रतिबोध देकर जैन धर्मानुरागी बनाया । आप की विचक्षण प्रतिभा का फल था कि एक ही आचार्य के शासनकाल में संभूतविजय और भद्रबाहु जैसे दो समर्थ शिष्य चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली बने।

आचार्य यशोभद्र 14 वर्ष का सामान्य साधु-प्रयाय और 50 वर्ष युगप्रधान आचार्य के रुप मे शासन की सेवा की । 86 वर्ष की आयु पूर्ण कर समाधि पूर्वक वीर निर्वाण सं 148 में स्वर्ग सिधारे । अपना उत्तराधिकारी के रुप में श्री संभूति विजय और श्री भद्रबाहु जी को नियुक्त किया । आचार्य यशोभद्र तक एक ही आचार्य की परम्परा चलती रही, वाचनाचार्य के रुप में संघ में रहने वाले अन्य. सन्त एक ही शासन की व्यवस्था निभाते रहे।

****

आचार्य श्री सम्भूतविजय जी

आचार्य यशोभद्र के पश्चात् आप छटे पट्टधर पर श्री संभूतविजय जी और श्री भद्रबाहु जी सुशोभित हुए । आचार्य संभूतविजय जी का जन्म माढ़र गोत्रीय ब्राह्मण वंश में वीर निर्वाण सं 66 में हुआ । 42 वर्ष, तक गृहस्थ जीवन में रहने के पश्चात आचार्य यशोभद्र के उपदेश से वीर निर्वाण सं 108 में श्रमण दीक्षा अंगीकार शुद्ध श्रमणाचार पालन करते हुए द्वादशांगी का समीचीन रूप से अध्ययन कर श्रुतकेवली पद प्राप्त कर 40 वर्ष तक सामान्य साधु पर्याय में जिन शासन की सेवा की और वीर निर्वाण सं 148 से 156 तक आचार्य पद पर रहते हुए संघ का सुचारु रुप से संचालन किया। चतुर्दश के ज्ञाता और वाग्लब्धिसम्पन्न होने के कारण अपने उपदेशों से अनेक भोगीजनों को त्यागी-वैरागी बनाया । आर्य स्थूलभद्र जैसे परम भोगी गृहस्थ भी

आपके ही शिष्य थे । आपके 12 शिष्य नंदनभद्र, उपनंदनभद्र, तीसभद्द, जसभद्द, सुमिणभद्द, समणिभद्द, पुण्यभद्द, स्थूलभद्र उज्जुमई जम्बू, दीहभद्द और पंडुभद्द । आर्य स्थूलभद्र की सातो बहनें भी आपके शासन में दीक्षित होकर धर्म प्रभावना करती रही। वीर निर्वाण सं 156 में अपना अन्तिम समय निकट समझ कर अनशन समाधिपूर्वक स्वर्गगमन किया ।

आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी जी(प्रथम)

श्री भद्रबाहु जी का जन्म प्राचीन गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में प्रतिष्ठानपुर में वीर निर्वाण सं 94 में हुआ । 45 वर्ष तक गृहस्थ आश्रम में रहे और वीर निर्वाण सं 139 अपने बड़े भाई विरहमिहिर के साथ आचार्य यशोभद्र के पास निग्रन्थ भगवती दीक्षा ग्रहण कर गुरु सेवा में रहकर बड़ी लगन के साथ द्वादशांगी का अध्ययन कर श्रुतकेवली बने । विरहमिहिर भी अध्ययन में रत रहकर सूर्य पन्नति और चन्द्र पन्नति का अध्ययन किया । भद्रबाहु स्वामी अपने बड़े गुरु भाई के साथ अपने शिक्षार्थी श्रमणों को श्रुतशास्त्रों का अध्यापन कराने के साथ-साथ शासन की महती सेवा की। आचार्य संभूतविजय जी के देवगमन के वाद वीर निर्वाण सं 156 में संघ की बागडोर पूर्ण रूपेण अपने हाथ में संभाली । विरहमिहिर ने 12 वर्ष तक संयम पालन करते हुए जब आचार्य पदवी न पा सके तो क्षुब्ध होकर संयम छोड पुनः गृहस्थ जीवन में आ गये और आचार्य भद्रबाहु से

द्वेष रखने लगे। जनता में प्रचार कर महान ज्योतिषाचार्य बन गए जिससे प्रतिष्ठानपुर नरेश ने अपने राज्य दरबार में नियुक्त कर लिया ।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने चार सूत्रों की रचना कर मुमुक्षु साधकों पर महान उपकार किया । अनेक पश्चातदर्शी आचार्यों ने इन अन्तिम चतुर्दशपूर्वधर आचार्य भद्रबाहु को (1) आचारांग, (2) सूत्रकृतांग, (3)आवश्यक, (4) दशवैकालिक, (5) उत्तराध्ययन, (6) दशाश्रुतस्कन्ध, (7) कल्प (8) व्यवहार, (9) सूर्यप्रज्ञप्ति, (10) ऋषिभाषित के साथ उपसर्गहर स्तोत्र , भद्रबाहु संहित एवं वसुदेवचरित्र नामक ग्रन्थ के कर्त्ता मानते हैं । आचार्य भद्रबाहु स्वामी विचरण करते हुए पलासपुर प्रतिष्ठान नगर पहुँचेतब वहां के नरेश विरहमिहिर को लेकर दर्शन हेतु आचार्य भद्रबाहु स्वामी के पास गये, तभी सन्देश मिला कि विरहमिहिर के घर पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है । महाराज जितशत्रु नरेश ने विरहमिहिर से पूछा बालक का भविष्य तो विरहमिहिर ने कहा- बालक शतायु, विद्वान और आपके द्वारा सम्मानित होगा । विधिवत् वन्दना कर आचार्य भद्रबाहु स्वामी से बालक का भविष्य नरेश ने पूछा- आचार्य भद्रबाहु स्वामी- बालक की आज से सातवें दिन बिल्ली के द्वारा इसकी मृत्यु हो जाएगी। आचार्यभद्रबाहु स्वामी की कथित अनिष्ट भविष्य वाणी से विरहमिहिर ने पुत्र की सुरक्षा का कड़ा प्रबन्ध किया पर सातवी रात कपाट की अर्गला के गिर जाने

से बालक की मृत्यु हो गई । पुत्र की मृत्यु के शोक संतप्त विरहमिहिर को भद्रबाहु स्वामी उसके घर गये। वराहमिहिर ने आचार्य जी का उठकर सम्मान प्रकट किया और कहा- आचार्य जी, आपका ज्ञान और कथन सत्य सिद्ध हुआ परन्तु बिल्ली से नहीं अर्गला से हुई । आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने कहा- भद्र हम कभी असत्य भाषा का प्रयोग नहीं करते, अच्छी तरह देखो उस अर्गला के अग्रभाग पर बिल्ली का रेखांकित चित्र है। जब देखा तो स्पष्ट बिल्ली का चित्र खुदा हुआ पाया। विराहमिहिर ने कहा- मुझे पुत्र वियोग का इतना दुःख नहीं जितना कि राजा के समक्ष मेरे द्वारा शतायु होने की आयु भविष्यवाणी असत्य हो गई । धिक्कार है मेरी इन सब पुस्तकों को, मैं अभी इन को नष्ट किये देता हूँ । आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने उसे रोकते हुए कहा तुमने अपने प्रमाद के कारण ज्ञान को कुलषित किया है, इन पुस्तकों से तुम व्यर्थ ही कुपित हो रहे हो ।

उसी समय प्रतिष्ठानपुर के नरेश विराहमिहिर के घर आए और शोक व्यक्त करते सन्तावना देते हुए कहा- शोकसागर में निमग्न न हो, यह तो संसार का अटल नियम है कि एक आता है और चला जाता है । राजा ने श्रावक धर्म ग्रहण कर अपने स्थान लौट गया । अपने अपमान से संत्रस्त वराहमिहिर ने पुनः भगवती दीक्षा ग्रहण कर अत्युग्र तप करने लगा आयु पूर्ण कर वराहमिहिर जैनधर्म का विद्वेषी व्यन्तर देव हुआ । अतः वह श्रावकों को अनेक

प्रकार के रोगों और उपद्रवों से पीड़ित करने लगा । आचार्य भद्रबाहु स्वामी के आगे श्रावकों ने दुःख गाथाएं रखी । तदन्तर आचार्यभद्रबाहु स्वामी ने पूर्वों से उद्धृत कर उवसग्गाहरं पासं- पांच पदो का स्तोत्र बना कर श्रावको को सिखाया, जाप करने से तत्काल सब उपसर्ग शान्त हो गये और सर्वत्र शान्ति का सम्राज्य हो गया । यह एक चिन्तामणिरत्न है ।

✿ 'उपसग्गहर स्तोत्र' – अर्थ सहित ✿

उवसग्गहरं- पासं, पासं वंदामि कम्म-घण मुक्कं ।
विसहर विस निन्नासं, मंगल कल्लाण आवासं ।

अर्थ : प्रगाढ़ कर्म – समूह से सर्वथा मुक्त, विषधरो के विष को नाश करने वाले, मंगल और कल्याण के आवास तथा उपसर्गों को हरने वाले भगवन पार्शवनाथ को मैं वंदना करता हूँ !

विसहर फुलिंग मंतं, कंठे धारेइ जो सया मणुओ
तस्स गह रोग मारी, दुइ जरा जंति उवसामं ।

अर्थ : विष को हरने वाले इस मन्त्ररुपी- स्फुलिंग को जो मनुष्य सदेव अपने कंठ में धारण करता है, उस व्यक्ति के दुश ग्रह, रोग बीमारी, दुष्ट, शत्रु एवं बुढापे के दुःख शांत हो जाते है !

चिइउ दुरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहु फलो होइ
नरतिरिएसु- वि जीवा, पावंति न दुक्ख-दोगच- चं ।।

अर्थ : हे भगवान्! आपके इस विषहर मन्त्र की बात तो दूर

रहे, मात्र आपको प्रणाम करना भी बहुत फल देने वाला होता है ! उससे मनुष्य और तिर्यंच गतियोंमें रहने वाले जीव भी दुःख और दुर्गति को प्राप्त नहीं करते है!

तुह सम्मत्ते लद्धे, चिंतामणि कप्पपाय वब्भहिए ।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ।।४।।

अर्थ : वे व्यक्ति आपको भलीभांति प्राप्त करने पर, मानो चिंतामणि और कल्पवृक्षको पा लेते हैं, और वे जीव बिना किसी विघ्न के अजर, अमर पद मोक्ष को प्राप्त करते है!

इअ संथुओ महायस, भत्तिब्भर निब्भरेण हिअएण
ता देव दिज्ज बोहिं, भवे भवे पास जिणचंद।।५।।

अर्थ : हे महान यशस्वी ! मैं इस लोक में भक्ति से भरे हुए हृदय से आपकी स्तुति करता हूँ! हे देव ! जिन चन्द्र पार्शवनाथ ! आप मुझे प्रत्येक भव में बोधि (रत्नत्रय) प्रदान करे! ।

आचार्यभद्रबाहु स्वामी उज्जयनि में विराजमान थे कि ज्ञान से अनुभव किया कि बारह वर्ष का भीष्ण दुष्काल पड़ने वाला है। समस्त मुनि मंडल को अवगत करवा कहने लगे दूर समुन्द्र के नज़दीक विहार कर दो यहाँ अहार पानी की सुविधा नहीं रहे गी । सभी गणनायक अपने अपने गणों के साथ विहार कर गये । जो स्थाविर थे, विहार करने में असमर्थ संलेखना संथारा कर आयु पूर्ण कर गये । गणनायक शान्तय अपना गण लेकर सौराष्ट्र में वल्लभी पहुँचने के पश्चात् वहाँ पर भी भीष्ण दुष्काल पड़ा । घोर

दुष्काल के कारण ऐसी वीभत्स स्थिति उत्पन्न हो गई कि भूख से पीड़ित रंक जानलेवा हो गये । इस भयावह स्थिति से मजबूर हो कर आचार्य शान्ति के सभी साधुओं ने कम्बल,दण्ड, तूंबा, पात्र और आवरण हेतु श्वेत वस्त्र. धारण कर लिए । घटना इस प्रकार है कि अहार कम मिलने पर एक वृद्ध सन्त जिसका शरीर कृष हो चुका था, रात को आहार लेने किसी श्राविका के घर गये, वह श्राविका गर्भवती थी और रात के अन्धेरे में साधु का रुप देख कर घबरा कर चिल्लाने लगी जिससे उस का गर्भपात हो गया। प्रातः संघ ने और सन्त समाज ने भी इस दुःखद घटना पर विचार किया और अर्धफलक (एक कपड़ा) कंधे पर रखना और अनिवार्य समझा। अन्ततोगत्वा दुष्काल का अन्त और सुभिक्ष का प्रादुर्भाव हुआ । तब आचार्य शान्ति ने पुनः कठोर अनुशासन ग्रहण करने को कहा, जिससे आचार्य के प्रमुख प्रथम शिष्य ने इस दुषम नामक पांचवे आरक में अब नहीं छोड़ सकते, क्रुद्ध होकर अपने दण्ड से गुरु के कपाल पर दे मारा जिससे आचार्य़ शान्ति देवगमन कर गये और प्रमुख शिष्य संघपति बन गया और पाषंड-श्वेताम्बर हो गया ।

स्वयं आचार्यभद्रबाहु स्वामी नेपाल जा कर योग साधना में व्यस्त हो गये । दुष्काल समाप्ति पर सन्तों में धर्म का अभाव हो गया तब संघ के प्रतिष्ठित सदस्य नेपाल आचार्य भद्रबाहु स्वामी के पास जाकर वापिस आने की विनती की

जिससे पुनः धर्म प्रभावना हो सके । जिसे आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने अस्वीकार कर दिया और अन्ततोगत्वा संभोगविच्छेद की संघाज्ञा के सम्मुख झुक कर कहा जिसने ज्ञान लेना है वह यहाँ आकर मुझ से ज्ञान ले सकता है, जिसे संघ ने स्वीकार कर अनेकों साधु एवं साध्वियां ज्ञान लेने के लिए नेपाल गये परन्तु केवल स्थूलिभद्र ही सफल हो पाए वह भी दो अंश कम दश पूर्व और चार पूर्व बिना अर्थ । घटना इस प्रकार की है कि स्थूलि भद्र की बहिने जो साथ गई थी, एक दिन आचार्य भद्रबाहु स्वामी के दर्शन हेतु गईं और पूछा भगवन् स्थूलिभद्र कहाँ है । आचार्य जी ने कहा- अमूक जगह वह साधना कर रहा है, वहां जा कर दर्शन कर लो, जब वह वहां गई तो स्थूलिभद्र जो तप के कारण कृष हो चुका था ने ज्ञान से बहनों को आते देख अपना रुप बदल कर शेर बन गया, जब बहनों ने शेर को देखा तो वह घबरा गई और समझने लगी कि शेर तो स्थूलिभद्र को खा गया होगा, पुनः आचार्य जी के पास गई, सारा वृत्तांत सुना दिया तब आचार्य जी वह शेर ही आपका भाई है, उसने रुप परिवर्तन कर लिया था। पुनः जा कर दर्शन किये । फिर स्थूलिभद्र ने आचार्य जी से आगे वाचना की याचना की तो आचार्य जी ने कहा, तुम आगे ज्ञान के अधिकारी नहीं रहे। बारम्बार क्षमायाचना प्रायश्चित किया, संघ ने भी आचार्य जी से निवेदन करने पर केवल मूलपाठ की वाचना देने को सहमत हो गये अर्थ नहीं । जिससे

चौदहपूर्व के धारक अन्तिम आचार्य भद्रबाहु स्वामी ही हुए। भद्रबाहु के नाम पर अन्य सन्त भी हुए हैं जिन्हों ने अनेक आगमों पर चूर्णिया लिखी । यह काफी समय बाद की बात है ।

उस समय उज्जयिनी में चन्द्रगुप्ति नामक राज्य करता था। महाराज को रात्रि के पिछले प्रहर में आश्चर्यजनक 16 स्वपन देखे । उन स्वपनों का फल जानने की राजा के मन में तीव्र इच्छा हुई और नगर के बाहर आचार्य भद्रबाहू अपने 12000 मुनियों के साथ राजकीय उपवन में पधारे । राजा चन्द्रगुप्ति अपने मन्त्रियों,सामन्तों,परिजनों और परितिष्ठित नगर निवासियो के साथ आचार्य भद्रबाहु स्वामी के समक्ष अपने सोलह स्वप्न सुनाते हुए फल जानने की इच्छा व्यक्त की ।

ज्ञानबल से आचार्य श्री स्वपनों का फल बताते कहा आने वाला समय घोर अनिष्ट का सूचक है । जो इस प्रकार है –

(1) अस्तमान रविदर्शन-पंचमकाल में द्वादशांगादि ज्ञान न्यून हो जाएगा।

(2) कल्पवृक्ष की शाखा भंग- भविष्य में राजा दीक्षा ग्रहण नहीं करेगें।

(3) छलनीतुल्य सछिद्र चन्द्र-जैन धर्म में अनेक मतों का प्रादुर्भाव होगा ।

(4) बारह फणों वाला सांप- निरन्तर बारह वर्ष का दुष्काल।

(5) उल्टे लौटते देवविमान-देवता विद्याधर, चारणमुनि भरतक्षेत्र में नहीं आवें गे ।

(6) अशुचि स्थान में कमल- उत्तम कुल की जगह हीन जाति के जैन धर्म अनुरागी होगें ।

(7) भूतों का नृत्य अधो जाति के देवों के प्रति श्रद्धाय़

(8) खद्योत का उद्योत- जैनागमों का उपदेश करने वाले मिथ्यात्व से ग्रस्त होगें और जैन धर्म कहीं कहीं रहे गा ।

(9) बीच मे सुखा पर छिछले जल से युक्त किनारो वाला सरोवर- जिन पवित्र स्थानों पर तीर्थंकरों के कल्याणक हुए हैं वहां धर्म नष्ट होगा । दक्षिणादि कहीं कहीं रहेगा ।

(10) कुत्ते को स्वर्ण थाली में खीर- लक्ष्मी प्राय़ः नीच पुरुषों के पास कुलीन वंचित होगें ।

(11) बन्दर को हाथी पर- नीच कुल के अनार्य राज्य करेगें ।

(12) समुन्द्र के तटों का उलंघन- राजा लोग न्यायमार्ग का उलंघन,प्रजा से लक्ष्मी लूटने वाले होंगे ।

(13) बछड़े द्वारा रथ-युवास्था में ही संयम ग्रहण करेगे, वृद्धावस्था में शक्ति क्षीण होगी ।

(14) राजकुमार को ऊँट पर- सत्य मार्ग का त्याग कर हिंसा मार्ग अपनाना .

(15) धूलि से आच्छादित रत्न राशी- निग्रन्थ मुनि भी आपस में एक दूसरे की निन्दा करेगें ।

(16) दो काले हाथियो के लड़ते- समय पर बादल नहीं बरसेगें ।

महाराज चन्द्रगुप्ति आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी से फल जान कर पुत्र को राज-पाट संभाल कर आचार्य श्री जी के पास दीक्षित हो गये ।

दशपूर्वधर आचार्य
आचार्य स्थूलिभद्र

आचार्यकाल-वीर निर्वाण सं 170 से 215

आचार्य स्थूलभद्र का जन्म वीर निर्वाण सं 116 में एक ऐसे सुसंस्कार परिवार में हुआ जो जैन धर्म में स्थिर आस्था और राजमान्य था । मगध सम्राट् उदायी की मृत्यु के पश्चात प्रथम नन्द गद्दी पर आसीन हुआ और नवम नन्द के महामात्य का नाम शकडाल था । मन्त्रीश्वर अपने समय का उच्चकोटि के राजनितिज्ञ, शिक्षा विशारद और कुशल प्रशासक थे । शकडाल के दो बेटे और सात पुत्रियां थी सभी विद्वान और ज्ञाता थे । बेटा स्थूलभद्र विद्वान और विरक्त था शकडाल ने उसे गृहस्थ जीवन के लिए वहां कि कुशल वाकपटुकि वेश्या कोशा के रंगशाला में भेज दिया । जिससे वह कोशा के बहुत नजदीक हो गया । राजदरबार में शकडाल के विरुद्ध षडयन्त्र रचा गया और राजा नन्द को मार कर शकडाल अपने पुत्र श्री यक को

राजा बनाना चाहता है । समाचार महाराज तक पहुँच गया और शकडाल को शंका हो गई कि महराज मेरे समस्त परिवार की हत्या करवा देगा । शकडाल के साथ उसका पुत्र श्री यक भी राजदरबार की व्यवस्था देखता था । शकडाल ने श्रीयक से कहा-बेटा जब मैं महाराज के दरबार मे सिर झुका कर अभिवादन करूँ तो तुम अपनी तलवार से मेरा सिर धड़ से अलग कर देना । श्रीयक ने कहा मैं पितृदोष कैसे ले सकता हूँ । शकडाल ने कहा मैं अकेला मरूँगा नही तो सारा परिवार मारा जाएगा । अगले दिन वह राजदरबार में उपस्थित हुआ, राजा के आगे सिर झुकाया तो श्रीयक ने तलवार से वार कर सिर अलग कर दिया, राजा बहुत अचम्भित हुआ और पूछा क्यों-तो श्री यक ने कहा जो राजद्रोही हो उसको उसी समय मार देना चाहिए । राजा ने कहा श्रीयक तो बहुत विश्वासपात्र है । शकडाल के संस्कार की व्यवस्था कर राजा ने श्रीयक को मन्त्रीपद के लिए कहा। श्री यक महाराज मेरा बड़ा भाई स्थूलभद्र बहुत विद्वान सर्वगुण सम्पन्नहै वह इस पद के लिए उपयुक्त है इस समय वह कोशा के रंगमहल में है, राजा ने अपने कर्मचारी भेज कर स्थूलभद्र को बुलाया और उसे मन्त्रीपद संभालने के लिए कहा । स्थूलभद्र महाराज मैं विचार कर बतला सकता हूँ, राजा जाओ उद्यान में जाकर विचार कर लो और शीघ्र उत्तर दो । स्थूलभद्र वहां से चला गया और विचार करने लगा मेरा पिता मारा गया तो

मैं इस कीचड़ में क्यों पड़ूं , उसने तत्काल पंचमुष्टी लुंचन कर साधु वेष धारण कर राज दरबार में आया और राजा से कहा मैं इस कीचड़ से मुक्त होना चाहता और सदा के लिए मुक्त होना चाहता हूँ सो मैं ने निश्चय कर लिया कि मैं निग्रन्थ मुनि बनूंगा । कहकर वह वहाँ से प्रस्थान कर गया और सीधा जंगलो की ओर चला । राजा ने पीछे कर्मचारी भेजे कहीं यह पुनः कोशा के रंगमहल तो नहीं गया और श्रीयक को मन्त्रीपद पर नियुक्त किया । स्थूलभद्र ने भव्य भवन,सुर-सुन्दरी कोशा के भोगों को तत्क्षण परित्याग कर आचार्य संभूतविजय के चरणों मे पहुँच कर सविनय निवेदन कर उन की चरणशरण ग्रहण वी.नि. सं 146 में भगवती दीक्षा ग्रहण की और इनके साथ इन की सातों बहने जिन में यक्षा सबसे बड़ी थी ने भी दीक्षा ग्रहण की । स्थूलभद्र समस्त श्रमणाचर्या का निर्दोष रुप से पालन करने के साथ साथ आचार्य जी से शास्त्रों का अध्ययन करने लगे । उस समय भीष्ण दुष्काल पड़ गया। आचार्य संभूत विजय के तीनो शिष्यों ने अभिग्रह कर अलग अलग चातुर्मास करने की आज्ञा का निवेदन किया। प्रथम शिष्य ने विनति की मैं सिंह की गुफा के द्वार पर चतुर्मास करना चाहता हूँ, दूसरे ने सांप की बांबी के पास चार महीने खड़े रहकर निराहार चतुर्मास करना चाहता हूँ और स्थूलभद्र ने कोशा के रंग महल में चातुर्मास करने का निवेदन किया जो आचार्य जी ने सहर्ष आज्ञा प्रदान की

और तीनों अपने अपने गन्तव्य तक पहुँच कर चातुर्मास आरम्भ कर दिया। स्थूलभद्र ने कोशा के रंगमहल पुहँचकर कोशा से आज्ञा मांगी चातुर्मास व्यतीत करने के लिए, कोशा ने समझा कि यह फिर कामकपटी होकर आया है, ग्रीष्ठ भोजन का आहार करवाया और आज्ञा प्रदान की । चार मास स्थलभद्र ने आँख उठाकर भी नहीं देखा पूर्णतय निर्विकार और मौन रहे। चतर्मास पूर्ण कर सभी आचार्य संभूतविजय के पास उपस्थित हुए । सिंह की गुफा पर चातुर्मास करने वाल मुनि ने अगले वर्ष कोशा के रंगमहल में चातुर्मास करने की आज्ञा मांगी जो आचार्य जी ने कहा वह स्थूलभद्र ही है जिसने काम पर विजय प्राप्त की तुम वहां मत करो चातुर्मास, सुमेरु के, समान अटल रहने वाला अचल और दृढ़ मन वाला स्थूल भद्र मुनि ही समर्थ है । गुरु की अवज्ञा कर मुनि ने हठ पूर्वक कोशा के रंगमहल में चातुर्मास करने की ठान ली और वह कोशा के रंग महल में पहुँच गया, कोशा ने षडरस भोजन करवा कर चातुर्मास करने की आज्ञा प्रदान की । मुनि को काम वासना जाग उठी और कोशा से निवेदन करने लगा । कोशा- साधु के कुछ नियम होते हैं वैसे हमारे भी नियम है हम केवल द्रव्य की ही दासियां है। मुनि मेरे पास द्रव्य नही परन्तु मेरी दयनीय दशा पर दया करो । कोशा मैं तुझे एक उपाय बता सकती हूँ नेपाल देश के क्षितिपाल

नवागत साधुओं को रत्न कम्बल का दान देते हैं आप वहाँ जाइये और कम्बल ले आइये ।

विषायान्ध को कोई ध्यान नहीं रहता, वासनापूर्ती के लिए वे नेपाल के लिए चल दिया और वहाँ से कम्बल प्राप्त कर कोशा के रंगमहल आ गया। कोशा को रत्नकम्बल दिया, कोशा ने अपने चीकड़ के भरे पांव पुँछ कर कूढ़े के ढ़ेर पर फैंक दिया । मुनि-अरे यह क्या इतना कीमती कम्बल कूढ़े पर फैंक दिया । कोशा ने कहा- तपस्विन आप एक मूढ़ व्यक्ति कम्बल की चिन्ता कर रहे हैं परन्तु आप को किन्चितमात्र अपने रत्न चारित्र को गहन गर्त में गिरा रहे हो । सुनते ही मुनि के मन में छाया हुआ काम सम्मोह विनष्ट हो गया और कहा श्राविके मुझे शिक्षा देकर भवसागर में पतित होने से बचा लिया । सीधा गुरु के पास जाकर प्रायश्चित कर पुनः तप त्याग में स्थिर किया ।

एकादशांगी की वाचना के पूर्ण होते ही द्वादशांगी के लिए एक भी श्रमण विद्यामान नहीं रहा । दुष्काल समाप्ति पर संघ नेपाल आचार्य भद्रबाहू स्वामी से विनती करने लगा कि आप आकर श्रमणों को चौदहपूर्वो की वाचना देकर धर्म की रक्षा करे। आचार्य भद्रबाहू ने संघ आज्ञा अस्वीकार कर कहा मैं महाप्राण ध्यान की साधना प्रारम्भ कर चुका हूँ संघ मुझ पर कृपा करे योग्य शिक्षार्थी श्रमणों को यहाँ भेजे मैं प्रति दिन सात वाचनाएं देता रहूँगा। स्थलभद्र के साथ 500 श्रमण अभ्यासार्थ नेपाल पहुँचे । आचार्य

भद्रबाहू स्वामी ने 500 मेधावी श्रमणों को वाचना देनी आरम्भ कर दी। विषय की जटिलता, दुरूहता से शनैः शनेः 499 श्रमणों ने पढ़ना बन्द कर दिया केवल स्थूलभद्र ही आगे बढ़ने लगा । आठ वर्षों तक ज्ञान प्राप्त करते रहे, दशपूर्व से दो अंश कम ही प्राप्त किया था कि बहनों के आने के कारण विद्या का प्रयोग कर सिंह बन गये। जब आचार्य भद्रबाहू स्वामी के पास आगे वाचना के लिए गये तो आचार्य जी तुमने अपनी विद्या का चमत्कार प्रकट कर ही दिया इस दिशा में तुम आगे पूर्वों की वाचना को योग्य पात्र नहीं।जितना प्राप्त कर लिया उसी से सन्तोष करो।
आचार्य जी की बात सुन कर स्थूलभद्र अपनी भूल पर प्रायश्चित करने लगा और क्षमा याचना करने लगा । आचार्य जी अन्तिम चार पूर्वों के अनेक दिव्य विद्याओं एवं चमत्कारपूर्ण लब्धियो से ओत-प्रोत ज्ञान का धारण करने के लिए तुम योग्य पात्र नहीं हो । संघ की प्रार्थना के पश्चात आचार्य जी ने कहा जो चार पूर्वों का ज्ञान नहीं दे रहा हूँ उसके पीछे कारण है क्षुद्र बुद्धि वाले श्रमण साधारण से साधारण बात पर किसी से क्रुद्ध होकर विनाश करने पर उतारू हो जाएंगे । अन्तिम चार पूर्वों का मूल ज्ञान देने पर सहमत हो गये और दिया । आचार्य स्थूलबद्र 30 वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहे और वीर निर्वाण सं 146 में आर्य संभूतविजय के पास दीक्षित हुए। 24 वर्ष तक सामान्य साधु रहे और वीर निर्वाण सं 170 से 215

तक आचार्य पद पर रहते हुए वीर शासन की से वा की । अन्त में 99 वर्ष की आयु में वैभवगिरि पर 15 दिन के अनशन संथारे के बाद स्वर्गगमन किया । आपके दो शिष्यों को आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती को आचार्य घोषित किया ।

आचार्य स्थूलभद्र के आचार्य काल में 44 वर्ष बीत जाने के बाद वीर निर्वाण सं 214 में श्वेताम्बरी नगरी में आषाढ़ाचार्य अपने शिष्यों के साथ पाउलाषाडज़ नामक चैत्य में विराजमान वाचना दे रहे थे कि रात्री के समय हृदयशूल की पीढ़ा से काल कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुए, उन के सभी श्रमण निद्राधीन थे किसी को भी उनकी मृत्यु का पता नहीं था । तत्काल उत्पन्न हुए आषाढ़ के जीव ने अवधिज्ञान लगाकर वस्तुस्थिति को जाना तो अपने शिष्यों के प्रति अनुकम्पा से प्रेरित अपने मूल शरीर में प्रवेश कर श्रमणों को वाचना यथासमय पूर्ण की । वाचनाएं पूर्ण होने के पश्चात् अपने शरीर को छोड़ जाते हुए साधुओं से कहा मुनियों असंयत होते हुए भी मैंने आपको वन्दन करने से नहीं रोका, उसके लिए आप मुझे क्षमा करे, मैं अमूक रात्री को काल कर देव बन चुका हूँ । कह कर देव चला गया ।

आचार्य महागिरि

आचार्यकाल-वीर निर्वाण सं 215 से -245

आर्य महागिरि का गोत्र एलापत्य था आप 30 वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहे, वीर निर्वाण सं 170 में दीक्षा

ग्रहण कर 40 वर्ष तक सामान्य साधु और 30 वर्ष आचार्यकाल में पूरे भारत में जिन शासन की सेवा करते हुए 100 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हुआ ।

आचार्य सुहस्ती

आचार्यकाल-वीर निर्वाण सं 245 से 291

आर्य सुहस्ती 30 वर्ष का आयु में दीक्षा ग्रहण की,24 वर्ष तक साधु जीवन और आचार्यकाल 46 वर्ष आपका गोत्र वशिष्ठ था। 100 वर्ष की आयु पूर्ण कर वीर निर्वाण सं 291 में संथारा संलेखना कर शरीर त्याग किया ।

आचार्य गुण सुन्दर (बलिस्सह)

आचार्यकाल-वीर निर्वाण सं 291 से 335

इन के समय अनेक वाचनाचार्य हुए जिन्हों ने इऩ की छत्रछाया में देशभर भ्रमण कर जिनशासन की सेवा की

आचार्य श्यांमाचार्य

आचार्यकाल-वीर निर्वाण सं 335 से 376

आपका जन्म वीर निर्वाण सं 280 में हुआ बीस वर्ष का आयु में वीर निर्वाण सं 300 में दीक्षा ग्रहण की, 35 वर्ष तक श्रमणधर्म की पालना की और वीर निर्वाण सं 335 में आचार्य पद पर सुशोभित हुए। 41 वर्ष तक आचार्य पद पर रहते समस्त भारत में जैन धर्म की प्रभावना करते हुए वीर निर्वाण सं 376 में 96 वर्ष की आयु पूर्ण कर देवलोक प्रस्थान कर गये ।

आचार्य सांडिल्य

आचार्यकाल-वीर निर्वाण सं 376 से 414

आचार्य सांडिल्य का जन्म कौशिक गोत्रिय वंश में वीर निर्वाण सं 306 में हुआ । आप ने 22 वर्ष की आयु में जैन भगवती दीक्षा ग्रहण की । आप 48 वर्ष तक सामान्य साधु पर्याय में रहे तदनन्तर वीर निर्वाण सं 379 में युगप्रधानाचार्य पर असीन हुए 28 वर्ष तक जिन शासन की सेवा की । 108 वर्ष की आयु पूर्ण कर वीर निर्वाण सं 414 मे स्वर्गगमन किया ।

आचार्य रेवतीमित्र

आचार्यकाल-वीर निर्वाण सं 414 से 450

आप 14 वर्ष की आयु में दीक्षित हुए 48 वर्ष तक ज्ञान, दर्शन, चारित्र की सम्यकरुपेण उपासना करते हुए सामान्य साधु रुप से श्रमणधर्म की परिपालना की और आचार्य सांडिल्य ने अपना उत्तराधिकारी के रुप में मुनि धर्म को प्रधानाचार्य घोषित किया । आप 46 वर्ष 5 मास और 5 दिन तक युगप्रधान रहते हुए वीर शासन की उल्लेखनीय सेवा करते 98 वर्ष की आयु में वीर निर्वाण सं 450 में देहत्याग किया ।

आचार्य धर्म

आचार्यकाल-वीर निर्वाण सं 450 से 494

आचार्य रेवतीमित्र के पश्चात् आप युगप्रधानाचार्य हुए। आप 18 वर्ष की आयु में दीक्षित होकर ज्ञान ध्यान में लीन हो गये। 40 वर्ष तक श्रमणधर्म की आराधना करते

युगप्रधानाचार्य नियुक्त हुए। 44 वर्ष तक देश में धर्म पताका फहराते हुए 102 वर्ष 5 मास और 5 दिन का आयु भोग कर 494 में स्वर्गस्थ हुए । आपके जीवन काल में तापसों का वर्चस्व बढ़ने लगा ।

आचार्य भद्रगुप्त

आचार्यकाल-वीर निर्वाण सं 494 से 533

आचार्य धर्म के पश्चात् आप वीर निर्वाण सं 494 में युगप्रधानाचार्य पद पर अधिष्ठित हुए । आप आगम ज्ञान के पारगामी और अप्रतिम विद्वान थे।आपको वज्रस्वामी जैसे महान युगप्रधान के शिक्षा गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त है । आचार्य वज्रस्वामी ने दशपूर्वों का ज्ञान आप से अर्जित किया । आप का जन्म वीर निर्वाण सं 428 मे इक्कीस वर्ष की आयु में भगवती दीक्षा ग्रहण कर 45 वर्ष तक साधु जीवन में जैन धर्म की महती सेवा करते हुए प्रधानाचार्य पद पर सुशोभित हुए और 39 वर्ष के आचार्यकाल में जन जन को जैन धर्म का बोध करवाया, आप ज्योतिष के महान् जानकर थे । आचार्य रक्षित उस समय वह सामान्य साधु थे अन्तिम आराधना करवाई । आपकी पूर्ण आयु 105 वर्ष 4 मास और 4 दिन की है ।

आचार्य श्री गुप्त

आचार्यकाल-वीर निर्वाण सं 533 से 548

आपका जन्म वीर निर्वाण सं 448 में हुआ, 35 वर्ष की युवावस्था में वीर निर्वाण सं 483 में श्रमणधर्म दीक्षा

अंगीकार कर 50 वर्ष तक सामान्य श्रमण से जैन धर्म का प्रचार करते हुए 10 पूर्व का ज्ञान अर्जित किया, आपने तप, संयम एवं विनय धर्म की आराधना के साथ साथ अंग शास्त्रों एवं पूर्वो का ज्ञान प्राप्त कर वीर निर्वाण सं 533 में आचार्य पद पर असीन हुए । आप 100 वर्ष 7 मास और सात दिन की आयु पूर्ण कर स्वर्गारोहण हुए ।

आचार्य वज्र

आचार्यकाल-वीर निर्वाण सं 548 से 584

आचार्य वज्र के जन्म समय से बड़ी रोचक कथा है, धनगिरि और सुनन्दा का विवाह बड़ी धूमधाम और हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ । नव दम्पति सहज-सुलभ सांसारिक भोगोपभोग का मर्यादापूर्वक उपभोग करने लगे । कुछ ही दिनों बाद वैश्रमणदेव देवायु पूर्ण कर सुनन्दा के गर्भ में वज्र का जीव आया । गर्भसूचक स्वप्न अनुसार दृढ़ विश्वास हो गया कि भाग्यशाली पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी । धनगिरी का मन संसार के भोगों से विरक्त हो सुनन्दा से कि मैं साधना पथ का पथिक बन कर आत्म-हित साधना करना चाहता हूँ, सौभाग्य से तुम्हें जीवन यापन करने के लिए पुत्ररत्न प्राप्त होने वाला है । सुनन्दा का सहोदर भी साधुमार्ग अपना चुका था । सुनन्दा ने शान्त स्वर से कहा-प्राणधार आप सहर्ष अपना परमार्थ सिद्ध कीजिए । अनुमति प्राप्त होते ही धनगिरि आर्य सिंहगिरि के पास तुम्बवन में पधारे और उनकी सेवा में

निग्रन्थ प्रव्रज्या ग्रहण कर आगम अध्ययन के साथ कठोर तपश्चरण करने लगा ।

सुनन्दा के गर्भकाल पूर्ण होने पर वीर निर्वाण सं 499 में परम तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया । नवजात शिशु को जाति स्मरण ज्ञान होने पर मन ही मन में विचार करने लगा पर देखा कि मेरा पिता कितना भाग्यशाली है कि श्रमणात्व स्वीकार कर आत्मोत्थान कर रहे हैं, मैं भी संयम ग्रहण कर आत्मोत्थान करूँ । एक दिन आर्य धनगिरि और आर्य समित भीक्षार्थ भ्रमण करते सर्वप्रथम सुनन्दा के घर पहुंचे। तब सुनन्दा कि सखियों ने कहा सुनन्दा बालक धनगिरि को दे दो । सुनन्दा ने विधिवत् वन्दना करने के उपरान्त कहा- आप इस बालक को ले जाए । आर्य धनगिरि ने स्पष्ट शब्दों मे कहा- श्राविके मैं इसे लेने के लिए तैयार हूँ कालान्तर में किसी प्रकार का विवाद न हो, इस दृष्टि से अनेक व्यक्तियो का साक्षता आवश्यक है । सुनन्दा- मेरा सहोदर समित और मेरी सखियां को साक्षी बनाकर मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं भविष्य में पुत्र के सम्बन्ध में बात नहीं करूँगी । यह कहते हुए सुनन्दा ने बालक को धनगिरि के पात्र में रख दिया, बालक तत्काल शांत हो गया रुदन बन्द हो गया । आर्य धनगिरि ने झोली के वस्त्र को सुदृढ़ गांठे लगाई और दक्षिण हस्त पात्रबन्ध थामे हुए अपने स्थान को चल दिए। उपाश्रय तक पहुँचने पर आर्य धनगिरि के भाजू भार से भग्न हो गये

और गुरु के समक्ष पहुँचे, आर्य सिंहगिरि भार से झुके हुए शिष्य को देखकर स्वयं झोलीबन्ध अपने हाथ में लिया और पूछा-मुने वज्र के समान अत्यन्त भारयुक्त क्या ले आए हो । आसन पर पात्र रख कर देखा तो चन्द्रमा के समान कीर्तिमान बालक तो आर्य सिंहगिरि ने नाम वज्र रखा । आर्य सिंहगिरि ने बालक के पालनपोषण के लिए साध्वियों के स्थानक में शय्यातरी की देखरेख में वज्र को सम्हाला और स्वयं वहां से विहार कर गये । शय्यतरी ने बालक को श्रद्धापूर्वक पालन करने लगी । बालक की बदली हुई स्थिति देख सुनन्दा के हृदय में मातृस्नेह जाग उठा । शय्यतरी से बालक लौटाने को कहा जो उसने स्वीकार नहीं किया । सुनन्दा स्नेहवश बालक वज्र को यथासमय आ कर स्तनपान करवाने लगी। बालक वज्र 3 वर्ष का हो गया साध्वियों के मुख से शास्त्रों के श्रवण में बड़ी रुचि रखने लगा । कालान्तर में सिंहगिरि विचरण करते शिष्यों सहित तुम्बवन में पधारे। सुनन्दा ने आर्य धनगिरि से पुत्र लौटाने की प्रार्थना की । आर्य धनगिरि ने साध्वाचार समझाते हुए कहा-साधुकल्पानुसार जो एक बार ग्रहण किया जाता है लौटाया नहीं जाता । सुनन्दा ने राजा से न्याय की प्रार्थना की। न्यायधिकारियों ने सब की बात सुनी असमंजस में पड़ गये। न्यायदृष्टि से बालक को दोनों के बीच रख दिया, बालक किधर जाता है उसका । सर्वप्रथम माता को कहा-माता ने खिलौने मिठाईयों का प्रलोभन दिया परन्त वज्र

आकृष्ट नहीं हुआ । तब पिता धनगिरि को अवसर दिया, धनगिरि ने अपना रजोहरण वज्र की ओर किया कि बालक उछल कर साधु कि गोद में आ गया । सुनन्दा मन ही मन विचार करने लगी-मेरे सहोदर आर्य समित, मेरे पतिदेव दीक्षित हो चुके हैं और पुत्र भी दीक्षित के समान है तो मुझे भी श्रमणी धर्म अंगीकार करना चाहिए।

जब बालक आठ वर्ष का हुआ आर्य सिंहगिरि ने श्रमण दीक्षा प्रदान कर अपने पास रख कर आगम ज्ञान देना आरम्भ कर दिया । स्वल्प समय में ही तप के साथ गुरु के पास जितना ज्ञान था वह अर्जित कर लिया । अवशिष्ट श्रुतज्ञान के लिए उज्जयिनी मे विराजमान दशपूर्व आचार्य भद्रगुप्त के पास अध्ययनार्थ भेजा । आर्य भद्रगुप्त ने रात स्वप्न देखा और शिष्यों को कहा- स्वप्न में खीर से भरे हुए पात्र सिंह शावक आ कर पी गया ऐसा प्रतीत होता है कि दशपूर्व का ज्ञान लेने का कोई इच्छुक आने ही वाला है। तभी मुनि वज्र ने वन्दन करने के पश्चात् अपने आगमन की सूचना दी । आचार्य भद्रगुप्त ने दशपूर्व का ज्ञान देकर पुनः अपने गुरु सिंहगिरि की सेवा में भेज दिया।

अपने प्रिय शिष्य वज्रमुनि को दशपूर्वधर के रुप में देखकर आर्य सिंहगिरि को परम सन्तोष हुआ । आर्य वज्रस्वामी ने गुरु के अन्तिम समय में बहुत सेवाशुश्रुषा की और गुरु के संघ का संचालन किया । संघ की सेवा करते हुए 80 वर्ष

की आयु में वीर निर्वाण सं 584 में शरीर त्याग किया और इनके साथ ही दशपूर्व का ज्ञान लुप्त हो गया आप ने आर्य रक्षित को केवल साढ़े नौ पूर्व का ही ज्ञान दिया था।

युगप्रधानाचार्य-आर्य रक्षित

आर्य वज्रस्वामी के पश्चात युगप्रधानाचार्य-आर्य रक्षित जिनका जन्म वीर निर्वाण सम्वत 522 में मालव प्रदेश दशपुर (मन्दसोर) में सोमदेव ब्राह्मण की पत्नी रूद्रसोमा जो जैनधर्म उपासिका थी की कुक्षी में हुआ । शिक्षा ग्रहण करने के लिए पाटलीपुत्र में रह कर स्वल्प समय में ही वेद-वेदांगदि का अध्ययन कर दशपुर वापिस लोटे नगर में उनका स्वागत हुआ परन्तु माता नजर नहीं आई घर आया माता को प्रणाम किया, माता उस समय सामायिक में होने के कारण पुत्र को देखा और स्वागत कहकर पुनः आत्मचिन्तन में लीन हो गई माता की ओर से अपेक्षित वात्सल्य और उल्लास का अभाव देख कर माता से पूछा- मेरे विद्याभ्यास कर लौटने पर नगर में सबको प्रसन्नता परन्तु तुम्हारे मुख प्रसन्नता नहीं क्या कारण ? पुत्र तुमने हिंसावर्द्धक ग्रन्थ पढ़े हैं इससे तो जन्म-मरण के भव बड़ेगें। ऐसे में मुझे सन्तोष किस प्रकार का ? स्व-पर कल्याण करने वाले दृष्टिवाद पढ़कर आता तो मुझे हर्ष होता । रक्षित ने जिज्ञासापूर्ण अपनी माता से दृष्टिवाद पर संवाद किया, तब माता ने कहा- इक्षुवाटिका में आचार्य तोषलिपुत्र विराजमान है वह दृष्टिवाद के ज्ञाता हैं । सुनते ही माता को

प्रणाम कर इक्षुवाटिका में आचार्य तोषलिपुत्र के पास पहुँच गया । स्थानक के बाहर ही खड़ा हो गया विचार करने लगा आचार्य के पास किस तरह जा कर अभिवादन करना चाहिए। एक अन्य श्रावक ने स्थानक में प्रवेश किया और आचार्य जी को वन्दन किया उसका अनुसरण करते रक्षित ने विधिपूर्वक वन्दना की । आचार्य. जी ने नया युवक देखकर पूछा- तुमने यह धर्मक्रिया का ज्ञान कहां से लिया । युवक रक्षित ने श्रावक की ओर इंगित करते कहा- इनसे । आचार्य जी ने आने का कारण पूछा-रक्षित विनम्र भाव से, भगवन मैं दृष्टिवाद का अध्ययन करने आप की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ । आचार्य जीदृष्टिवाद का ज्ञान तो दीक्षित होने पर ही दिया जाता है , रक्षित तत्काल दीक्षा ग्रहण करने के लिए उत्सुक हो गया और दीक्षा ग्रहण कर मुनि बन गये । मुनि रक्षित ने प्रार्थना की कि राजा और जनता को मेरे से अनुराग है कहीं आकर मुझे वापिस न ले जाए यहां से विहार करना चाहिए। आचार्य जी अपनी शिष्यमंडली के साथ अन्य जगह विहार कर दिया और वहां मुनि रक्षित ने आचारंग आदि एकादश अंगो का ज्ञान प्राप्त कर लिया और अग्रेतन अध्ययन के लिए दशपूर्वधर के ज्ञाता आचार्य वज्र के पास भेज दिया। आचार्य वज्र की सेवा में जाते रास्ते में उज्जयिनी पहुँचे वहाँ स्थविर भद्रगुप्त ने मुनि रक्षित का स्वागत किया और कहने लगे ठीक समय पर आए हो, अब मेरा अन्तिम समय आ चुका है । मुनि रक्षित ने भद्रगुप्त

की सेवा की और भद्रगुप्त जी ने मुनि रक्षित से कहा- तुम दशपूर्व का ज्ञान लेने आचार्य वज्र जी के पास जा रहे हो, अच्छा है लेकिन ज्ञान लेकर तुम अलग स्थानक में रहना क्योंकि आचार्य वज्र जी की कुण्डली में एक ऐसा ग्रह बैठा है जो एक दिन उनके साथ रहेगा, उसका काल भी उसी के साथ होगा । भद्रगुप्त विधिवत् संथारा सलेखना कर प्रभु चरणों में लीन हो गये।

मुनि रक्षित ने आचार्य वज्र जी की ओर विहार कर, वहाँ पहुँच गये और अलग स्थानक में ठहर कर आचार्य जी से ज्ञान की याचना की । आचार्य जी ने कहा- अलग रह कर अध्ययन कैसे ,मुनि रक्षित ने भद्रगुप्त की कही हुई बात बता दी तब आचार्य जी ने कहा ठीक ही कहा होगा । मुनि रक्षित शीघ्र ही 9 पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर दशवें पूर्व का अध्ययन करने लगे । एक दिन मुनि रक्षित ने आचार्य जी से कहा-कितना और बाकी है । आचार्य जी- अभी तो सिन्धु में से बिन्दु जितना हुआ समन्द्र अभी बाकी है । 22 वर्ष की दीक्षा वय होने पर वीर निर्वाण सम्वत 544 में युगप्रधान घोषित हुए और 40 वर्ष तक संघ की सेवा करते रहे । 75 वर्ष की आयु पूर्ण कर वीर निर्वाण सम्वत 597 में देवलोक गमन किया । आपके दीक्षा गुरु आचार्य तोषलिपुत्र और विद्या गुरु आचार्य वज्र माने जाते हैं ।

आचार्य रक्षित के समय मथुरा में अक्रियवादीयों से कोई शास्त्रार्थ करने को तैयार नहीं था कि संघ ने आचार्य रक्षित

से विनती कर मुनि श्री गोष्ठामहिल को मथुरा पधाराने की प्रार्थना की जो सहर्ष स्वीकार मुनि श्री गोष्ठामहिल को मथुरा भेज दिया और वह सफल हो कर वापिस लौटे, अतः संघ ने चातुर्मास की प्रार्थना कर चातुर्मास प्राप्त मुनि श्री गोष्टामहिल मथुरा पधार गये। आचार्य रक्षित ने अपना अन्तिम समय निकट समझ संघ सं परामर्श कर अपना उत्तराधिकारी पर विचार किया। संघ गोष्ठामहिल के पक्ष में था जबकि आचार्य श्री नहीं थे, संघ से कहा-कि मान लो तीन घड़ो में एक में तेल, दूसरे में घी और तीसरे में उड़द भरे हैं उन तीनों को अन्य तीन में उल्टाया जाए तो खाली कौनसा होगा सब ने कहा उड़द वाला तो आचार्य रक्षित ने कहा- मैं अपना ज्ञान दुर्बलाचार्य में उड़ेल चुका हूं जिससे आचार्य पद का वह अधिकारी है अन्य दो नहीं, जो सर्व सम्मति से स्वीकार कर लिया परन्तु गोष्ठामहिल क्षुब्ध हो जिनशासन के विपरीत हो गया।

आर्य दुर्बलाचार्य

अत्यन्त शान्त स्वभाव के अध्ययन के साथ तप में लीन रहने से आप अत्यन्त कमजोर हो गये जिसके कारण आर्य दुर्बलाचार्य के नाम से विख्यात हुए। आप भी साढ़े नौ पूर्व के ज्ञाता थे जैसे आचार्य रक्षित कहते कि मैं ने अपनी सारा ज्ञान इसमें उढेल दिया है । आप श्रमणों को वाचना देते

आठ वाचनों तक उल्लेख मिलता है । इसके बाद ज्ञान क्षीण होता गया ।

आचार्य देवार्द्धिक्षमाश्रमण

आप जन्म से कश्यप गोत्रिय क्षत्रिय थे,वैरावल पाटण के महाराज अरिदमन के शासन में एक सामान्य अधिकारी कामर्द्धि की पत्नी कलावती के गर्भ में आये, पूर्व जन्म से हरिणैगमेषी देव थे । योग्य शिक्षक से शिक्षा प्राप्त कर यौवनावस्था में दो कन्याओं के साथ विवाह हुआ । कुसंगति के कारण शिकार करने के आदि बन गये । नवोत्पन्न हरिणैगमेषी देव ने बहुत प्रयास किये समझाने के परन्तु न समझ सका । एक बार जब वह जंगल मे मृग का शिकार करने लगा तो हरिणैगमेषी देव भयंकर शेर पीछे की ओर खाई और दोनों ओर बड़े बड़े शूल दांतो वाला राक्षस बन डराने लगा तब प्राण रक्षा कि याचना करते कहने लगा मुझे बचाओ जैसे कहोगे वैसे करूँगा, हरिणैगमेषी देव ने उठाकर आचार्य लोहित्य सूरि के पास पहुँचा दिया, उपदेश सुन श्रमणधर्म ग्रहण कर निरन्तर ज्ञानाराधन करते हुए एक पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर प्रधानाचार्य बने ।

देवार्द्धिगणी क्षमा श्रमण के बाद जैन धर्म उत्थान एवं गर्त के आवर्त में घूमता उलझता-सुलझता रहा । यति वर्ग एवं भट्टारक वर्ग का बाहूल्य तथा आधिपत्य हो गया। धर्म दूकानदारी बन गया, परिवर्तन की जरूरत पर साहस कौन करे ।

ऐसे में राजस्थान में जन्में लोकाशाह बचपन से ही धार्मिक एवं साहसी थे । माता पिता के देहावसान के बाद

आप अहमदाबाद आ गये । वहां राजा मोहम्द शाह तक अपनी जवाहरात परीक्षा का लोहा मनवाया और वहाँ के प्रमुख नागरिक बने । हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षधर रहे। ज्ञान जी यति उनके सुन्दर लेखन से प्रभावित हो कर उन से आगम लेखन का कार्य करवाया जिससे उनकी दृष्टि बदल गई । उपदेशक बने अन्ततः सब कार्य छोड़ गृहकार्य से निवृत होकर दीक्षित हुए । उनके साथ अन्य पुरुष भी दीक्षित हुए और गुजरात से आगरा तक इन का प्रभाव बढ़ता गया । अमूर्ति पूजक श्वेताम्बर का प्रारम्भ हुआ । ये क्रान्ति खूब चली अन्त में यतियों ने तेले के पारणें मे जहर देकर क्रान्त पुरुष का अन्त कर दिया । जब श्री जीवाराज जी, श्री धर्म सिंह जी, श्री धर्मदास जी एवं श्री हर जी ऋषि और श्री लव जी ऋषि नें मंद ज्योति में नया आलोक भरा । नई क्रान्ति को जन्म दिया । जीवाराज जी सूरत में जन्में जगा जी यति के शिष्य थे । आगम अध्ययन किये तो रहस्योद्घाटन हुआ और पीपाड़ में पुन पाँचमहाव्रत धारण कर मुँहपत्ति में डोरा डालकर तथा रजोहरण की अनिवार्यता को स्थापित किया । इसमें चारों युग पुरुष आगे बड़े । धर्मसिंह जी महाराज का जन्म गुजरात प्रान्त के जामनगर में हुआ, आप माता-पिता के साथ शिवऋषि के पास दीक्षित हुए, क्रियोद्धार मन शास्त्रोध्ययन से बना । तब गुरु ने उन्हें दरियाखान पीर की दरगाह पर एक रात व्यतीत करने को कहा जहाँ भीषण उपसर्ग सहने पड़े और सफल हुए जिससे इनका नाम दरियापुरी सम्प्रदाय से प्रसिद्ध हुआ । इन के साथ 16 मुनि

इस पथ पर आए । इन्हों ने शास्त्रों पर चूर्णि भाष्य ना लिख कर टिब्बे लिखे । 27 आगमों पर इन के टिब्बे उपलब्द है ।

श्री हरऋषि जी कुँवर गच्छ से निकल कर क्रियोद्धार किया, इनकी सम्प्रदाय कोटा सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुई। श्री धर्मदास जी का टोला 22 टोला के नाम से प्रसिद्ध हुणलव ऋषि जी खंभात में बजरंग जी यति के पास शास्त्राभ्यास किया और क्रियोद्धार का मन बना । पुनः पाँच महाव्रत धारण कर संकटों से नही घबराये और विरोधियों ने विष मोदक देकर देह उत्सर्ग का कारण बना । इनके शिष्य श्री सोमजी ऋषि आगे चलकर श्री हरिदास जी लाहौरी लाहौर की तरफ आए । पंजाब सम्प्रदाय और ऋषि सम्प्रदाय का मूल उद्गम निकास एक ही है ।

साधुमार्गी शब्द तो समस्त तीर्थंकरों के समय से चला आ रहा है । समय का प्रभाव सदा साधु समाज को कुछ आकर्षण दिखाता रहता है जिस से कुछ साधु समय के प्रभाव में बह जाते हैं और कुछ आत्मसाधना की उत्कृष्ट उच्चतम दशा को प्राप्त करने के लक्ष्य से स्वच्छंदता एवं पदलिप्सा से अपने को अलग रखते हैं उन्हीं में से आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज अपनी साधना को सबल बनाने हेतु देहभाव से उपरीत की ओर बढ़ने हेतु कुछ कठिन प्रावधान हेतु नये संघ का निर्माण किया जिसका नाम श्री अखिल भारतीय साधुमार्गीय जैन संघ रखा गया । समाचारी में तप त्याग और भिक्षावृति का कठिन से पालन करना

किया गया । आपने अपने शरीर की शिथलता को देखते हुए मुनि श्री शिवलाल जी को युवाचार्य घोषित किया जिन्होंने अपने संघ का संचालन बड़ी कुशलता से निभाया और वृद्धावस्था के कारण मुनि श्री उदयसागर जी को अपना उत्तराधिकारी बनाया । आचार्य श्री जी ने धर्म प्रभावना हेतु पंजाब, कराची व रावलपिण्डी (वर्तमान पाकिस्तान) में धर्मध्वजा फहराते हुए पंजाव में आपकी भेंट श्री मायाराम जी जो स्वयं कठिन वृत्ति वाले थे, दोनों एक-दूसरे से अत्यन्त प्रभावित हुए । जब श्री मायाराम जी महाराज राजस्थान पधारे तो उनका आचार्य श्री द्वारा भव्य सत्कार किया गया और अपना एक वैराग्यी छोटेलाल जी को उनको भेंट कर दिया जिनके शिष्य व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज हुए जिनके प्रशिष्य संख्या 40 से अधिक पूरे भारत में कठिन साधुवृति का पालन करते हुए महावीर संदेश जन जन तक पहुँचा रहे हैं । वि सं. 1954 आश्विन पूर्णिमा को अपनी सम्प्रदाय की सुव्यव्स्था के लिए श्री चौथमल जी महाराज को उत्तराधिकारी बना कर संलेखनापूर्वक संवत 1954 माघ शुक्ला दशमी को प्रभुचरणों में लीन हो गये । श्री चौथमल जी महाराज ने समस्त स्थानकवासी श्रमण-श्रमणियों को एक झंडे तले लाने का भरसक प्रयास किया। कईं बार पंजाब सम्प्रदाय के सन्तों से विचार-विमर्श हुआ । अपनी शारीरक स्थिति के डगमगाते आप ने श्री लाल जी महाराज को पदभार संभाला । आपका

जीवन त्यागमय,तपोमय, एवं साधनानिष्ठ जीवन था । श्री जवाहरलाल जी महाराज को आचार्य पद पर आसीन कर आप अल्पवय 51 वर्ष की आयु में नश्वर संसार से विदा हो गये । आचार्य श्री जवाहर लाल जी महाराज ने बुलंद अवाज में कहा- अगर हम स्थानकवासी समाज की उन्नति चाहते हैं तो हम सब निग्रन्थ सन्तों को एक प्रधानाचार्य के नेतृत्व में रहना चाहिए । अजमेर मे आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज,युवाचार्य श्री कांशीराम जी महाराज, शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी महाराज, श्री मणिलाल जी महाराज, कविवर्य श्री नानचन्द जी महाराज मिल कर निर्णय लिया एकता के पक्ष में । फिर श्री गणेशी लाल जी महाराज को युवाचार्य घोषित कर सारा भार सौंप दिया । आचार्य श्री जवाहर लाल जी एकता के जोश से 22 सम्प्रदायों के 53 प्रतिनिधि 341 मनियों एवं 768 श्रमणियों के साथ साधड़ी सम्मेलन अक्षय तृतिया 27.4.1957 को श्री गणेशी लाल जी महाराज को शांतिरक्षक के नेतृत्व में श्रमण संघ निर्मित हुआ । आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने प्रधानाचार्य के लिए श्री गणेशी लाल जी का नाम प्रस्तुत किया, जो सब को स्वीकार्य था परन्तु श्री गणेशी लाल जी महाराज ने कहा मेरी स्वीकृति के बिना कैसे मेरा नाम लिया गया,सभी ने पद स्वीकार हेतु सानुरोध एवं साग्रह निवेदन करने लगे । इसी चर्चा के बीच श्री सौभाग्यमल जी महाराज ने पंजाब आचार्य श्री आत्माराम जी का नाम रखा जो सर्वसम्मति से स्वीकार कर

आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी सत्ता एवं अधिकार आचार्य श्री गणेशी लाल जी के अधीन रखे । अततः आचार्य श्री गणेशी लाल जी महाराज सादड़ी में बनी समाचारी में जो संशोधन होना चाहिए था वह दृषिटगोचर नहीं हुई शुद्ध निग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा हेतु श्रमणसंघ का परित्याग कर पुनः अपनी मूल स्थिति में आ गए । शारीरक स्थिति को देखते हुए 18.4.1961 को संघ की व्यवस्था हेतु सर्वाधिकार एवं पूर्ण उत्तरदायित्व की घोषणा कर तपस्या में लीन महाप्रयाण कर गये ।

इन्हीं के पदचिन्हों पर चलते महान समता विभूति आचार्य नानेश (श्री नानामल जी महाराज) जो अपने समय के महान साहित्यकार आध्यात्मिक समाजसुधारक एवं परिवार को एक सूत्र में बांधने में कुशल पूर्वक निभाया। आपकी साधना एवं पुण्य प्रकर्ष से प्रसंग बनता रहा एवं एक के बाद एक दीक्षा प्रसंग बनते गये । शासन का विस्तार एवं विकास होता गया । गांव गांव में विचरण करते आचार्य श्री जी ने हजारों लोगों को व्यसनमुक्त कराया । आप ने छतीसगढ़,मध्यप्रदेश, राजस्थान,मेवाड़, गुजरात, महाराष्ट्र तक धर्मध्वजा फहराते चले गये । मुझे इस महान समता विभूति के दर्शन करने का सौभाग्य तो नहीं मिला परन्तु उनकी महान संघ सेवा की गाथाएं सुनने का अवसर मिला जब इनके शिष्यरत्न श्रद्धेय श्री पारस मुनि जी महाराज और श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी महाराज पंजाब पधारे जब सन्

1995 का जालन्धर में श्री ज्ञानमुनि जी का चातुर्मास हुआ तो मैं उस समय जैन समाज का महामन्त्री था तो मुझे बहुत कुछ जानने को मिला । इन्हीं के मुखारविन्द से सुना था कि भगवान महावीर की शिष्य परम्परा में प्रथम गणधर गौतम ऐसे ही निष्ठावान थे जिनके कण-कण में भक्ति और ज्ञान की सुगन्ध रची हुई थी।

50000 साधु-साध्वियों का संघ, लाखों-लाख श्रावक-श्राविकाओं का संघ उनके नेतृत्व में अनुशासित था । फिर भी इतने विनम्र की सम्पूर्ण श्रय भगवान के चरणों में अर्पित कर देते थे । उनसे संबधित ज्ञान चर्चाओं में वे उजागिर होते थे । इनमें श्रावस्ती की चर्चा महत्वपूर्ण है जहां मान-अपमान का कोई औचित्य नहीं । गुरु गौतम गणधर स्वयं केशी स्वामी के पास पहुँचते है । दोनों ही दुरन्धर विद्वान, एक बाल ब्रह्मचारी तो एक सर्वस्व त्यागी (एक ओर वस्त्रधारी तो दूसरी ओर दिगम्बर) अपूर्व दृश्य था श्रावस्ती के तिन्दुक वन में । दोनों के पाँच-पाँच सौ शिष्य ,दोनों परम्परा के शिष्य आचार के भिन्न रुप देखते हैं तो स्वाभाविक था प्रश्न खड़े हों ।

सब का प्राप्तव्य एक है मोक्ष, मार्ग एक है तो पन्थ भेद क्यों ? शिष्यों के मन में बार-बार प्रश्न उठ रहे हैं । केशी कुमार के शिष्यों ने देखा कि सत्य के मार्ग में वस्तु बाधक है जबकि गौतम के शिष्यों ने देखा तो विचार किया कि साधना के मार्ग में बहुमुल्य वस्त्रधारी उचित हैं । पार्श्व

परम्परा प्राचीन है केशी कुमार जेष्ठ है अतः उनके प्रति आदरभाव से वन्दना करते हैं गणधर गौतम, केशी कुमार ऊँचाई पर स्थित है, महानता है उनकी, कि स्वयं स्वागत कर गौतम को सम्मान पूर्वक अपना आसन दिया, आदर किया । एक आसन पर शोभायमान अद्भुत छटा बिखेर रहे थे प्रश्न का समाधान करते हुए गौतम केशी कुमार को भन्ते ! कहकर सम्बोधित करते हैं, कितना आदर, कितना विनम्र है केशी कुमार के प्रति, केशी कुमार भी समाधान होने पर साधुवाद देते हैं । प्रशंसा करते है आत्मीय सम्बोधन है 'गोयम' ! तब पार्श्व-परम्परा सम्मिलित होना चाहती है तो वहां पर महावीर तो है नहीं, तो फिर भी गौतम उन्हें सम्मिलित होने की स्वीकृति देते हैं ।

श्रद्धेय श्री पार्श्वमुनि से भी बहुत कुछ जानने को मिला उन से नियम पच्खान भी लिए । जान कर मुझे खेद हुआ कि उस समता विभूति के परिवार में विभिन्न भागों में बंट गया है आज उनका संघ तीन धाराओं में जिनके आचार्य श्री रामलाल जी, दूसरा श्री विजयराज जी और तीसरा श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी के रुप में वीर शासन की सेवा कर रहे है। एक ज्ञान गच्छ के नाम से उत्कृष्ट संयम अराधना करते हुए स्थानकवासी संघ में धर्म प्रभावना कर रहे हैं
सबसे बड़ा स्थानकवासी संघ श्रमण संघ है जो इस प्रकार है। लाहौर के श्री हरिदास जी ने गुजरात जाकर श्री लवऋषि जी की क्रान्ति से प्रेरित दीक्षा धारण की , इन्होंने श्री

सोमजी ऋषि का शिष्यत्व धारण कर पंजाब पधारे और संयमी विजय पताका फहराई, इनके देवगमण के बाद श्री वृन्दावन जी, श्री भवानीदास जी ने गण को संभाला और श्री मलूकचन्द जी महाराज ने संघ को आगे बढ़ाया यह इतने दमदार सन्त थे कि आगरा में 250 मुस्लमानों को मस्जिद में मुँहपत्ती लगवा कर प्रभावना की थी । हमारी परम्परा मलूकचन्द जी का टोला कहलाती है । इनके बाद श्री महाँसिंह जी ने धर्म ध्वजा फहराते हुए सुनाम16 दिन का संलेखना संथारा कर प्रभु चरणों में लीन हो गए । श्री कुशल जी, श्री छजमल जी, श्री नागरमल जी ने धर्म को गतिमान रखा । समय का प्रभाव से पंजाब में जैन सन्तों का अभाव हो गया और श्री छजमल जी महासाध्वी श्री मूलां जी के संसारी मौसा जी थे और श्री छजमल जी अकेले एक गांव में बिमार पड़ गये, सुनाम में विराजित महासाध्वी श्री खूबा जी महाराज, श्री ज्ञानों जी महाराज, श्री मेलों जी महाराज एवं श्री मूला जी महाराज विराजमान थे कि सुनाम के एक राजपूत श्री निर्मलचन्द जी अपने चार बेटों के साथ गुरुदर्शनों के लिए पधारे, महासाध्वी श्री ज्ञानों जी की पारखी आँखों ने बच्चो पर निगाह डाली तो रामलाल में आलौकिक गुण देखकर कहा यह बेटा मुझे दे दो, विचार करने पर सोचा कि लड़की होती तो शिष्या बना लेती यह वैसे ही कह रहीं है और कहा महाराज जी यह आपका हो गया । फिर महासाध्वी श्री ज्ञानो जी ने कहां इस बालक के लक्षण धर्म

प्रभावना के है यह उच्चकोटि का विद्वान होगा तो आप की आज्ञा होनी चाहिए जो सहर्ष स्वीकार कर ली तब महासाध्वी श्री ज्ञानों जी ने समाज के प्रतिष्ठित महानुभावों को बुलाया और कहा यह बालक मैंने ले लिया है आप इसके रहन-सहन भोजन की व्यवस्था करना है, महानुभाव बोले महाराज आप साध्वी है लड़के को लेकर क्या करोगी, साध्वी जी यह मेरी आज्ञा है पालन करो । समाज ने वैसा ही किया, बालक रामलाल बुद्धिमान था सुबह स्थानक में आ जाता ज्ञान अर्जित करता प्रतिदिन का नियम बन गया । कुछ ही दिनों में बालक ने प्रतिक्रमण एवं कुशल बुद्धि से आगमों को कण्ठस्त कर लिया साध्वी जी से प्रतिबोधित हो कर साध्वी जी से पाँचमहाव्रत धारण कर मुनि बन गए और श्री छजमल जी का शिष्य घोषित कर उन की सेवा में भेज दिया । गुरुदेव के स्वर्गवास के बाद आप दिल्ली पधार गये और अन्य सन्तो से आगमज्ञान प्राप्त कर विद्वान सन्त बन गये, आप की ओजस्वी वाणी से श्रावक मन्त्रमुग्ध हो जाते थे । इन्हीं के शिष्य बने श्री अमरसिंह जी महाराज आपके साथ ही इनके धर्मप्रेमी सज्जन श्री जयन्तिदास जी और श्री रामरत्न जी भी दीक्षित हो गये । पंजाब, यू.पी दिल्ली में विचरे । गुरुदेव के स्वर्गवास के पश्चात कुछ गुरुभाईयों के साथ जीव-अजीव पर मतभेद होकर अलग-अलग हो गए । श्री अमर सिंह जी अमृतसर होते हुए स्यालकोट पहुँचे जहाँ इनके ससुराल थे, स्वसुर ने इनके

ज्ञान के लिए सभी भाषाओं के विद्वान पढ़ाने के लिए लगा दिए और इनका साला मुश्ताकराय भी इनका प्रथम शिष्य बना । इन्हें चाँदनी चौंक दिल्ली में राजस्थानी सम्प्रदाय के सन्त श्री कजौड़ीमल जी के शिष्य श्री कन्हींराम जी ने सम्वत् 1913 को आचार्य पद देकर सम्प्रदाय प्रमुख घोषित किया । पंजाब प्रान्त में धर्मसंघ को गतिमान किया आपके देवगमन के बाद आपके शिष्य श्रीरामबख्श जी को आचार्य पद सौंपा गया परन्तु मालेरकोटला में विराजित 21 दिन पश्चात ही संलेखना संथारा कर नश्वर शरीर को त्याग प्रभु चरणों में लीन हो गए और श्री मोतीराम जी महाराज को उत्तराधिकारी घोषित कर गये । उस समय श्री जीवन दास जी महाराज के शिष्य श्री आत्माराम जी ने विद्रोह कर कुछ सन्तों को साथ लेकर मूर्तिपूजक बन गये । मुँहपत्ती उतार कर अपने उपर की चादर की पीला रंग देकर पीताम्बर मूर्तिपूजक संघ की व्यवस्था की उस समय समाज के विघटन पर खूब शास्त्रार्थ चले जिसमें प्रवर्तिनी श्री पार्वती जी महाराज ने स्थानकवासी जैन समाज को सुदृढ़ करने पर अपना योगदान दिया । आचार्य श्री मोतीराम जी के पश्चात पंजाब के प्रधानाचार्य श्री सोहनलाल जी ने कमान संभाली, वह ज्योतिष के महाज्ञाता होने पर आगम सूर्य पन्नति और चन्द्रपन्नति अनुसार जैन पंचाङ तैयार किया जो विरोधाभास का कारण बना जिसे पत्री-परम्परा के नाम से जाना जाता है समाज के संघठन का कार्यभार श्री कांशीराम जी महाराज

को सौंपा और उन्हों ने समस्त सन्त समाज के परामर्श से परम्परा को ही मान्यता स्वीकार की। प्रधानाचार्य श्री सोहन लाल जी का अमृतसर में संथारा-संलेखना से देवगति को प्राप्त कर श्री कांशीराम जी महाराज को उतराधिकारी आचार्य पद सौंपा गया । आप आत्मार्थी एवं कुशल अनुशास्ता संघसंचालक बने । आपने समस्त पंजाब दिल्ली राजस्थान मेवाड़ होते हुए बन्बई तक धर्म प्रभावना की । वापिस पंजाब पधारते हुए आप अम्बाला में अस्वस्थ हो गये और संथारा संलेखना कर नश्वर शरीर का त्याग किया कुछ ही समय के बाद पसरूर में विराजित महाप्रभावी श्री खजानचन्द जी महाराज देवलोग प्रस्थान कर गये । पंजाब संघ की एकता के लिए स्वामी श्री शुक्लचन्द जी महाराज ने अपनी युवराज पदवी का त्याग कर शास्त्रज्ञ एवं हिन्दी रूपांतरण के प्रथम श्रेयकारी श्री आत्माराम जी महाराज लुधियाना में स्थिरवास थे को पंजाब आचार्य घोषित किया गया । समस्त सम्प्रदायों के महान सन्तों ने श्रमणसंघ एकता को लेकर साधड़ी सम्मेलं में सभी पध्वीदारी सन्तों ने अपनी पध्वियां का त्याग कर सन् 1952 में श्री आत्माराम जी महाराज को आचार्य सम्राट घोषित कर श्रमण संघ एकता का प्रमाण दिया । श्री मिश्री मल जी महाराज मधुकर जी को युवाचार्य घोषित कर व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलाल जी को प्रधानमन्त्री पद से सुशोभित किया गया परन्तु कुछ समय के पश्चात वे श्रमणसंघ से अलग हो गये।

आचार्य श्री आत्माराम जी लब्धिधारी सन्त इस युग में हुए और 30 जनवरी 1962 को क्रूरकाल ने इस महान विभूति को छीन लिया । इसके बाद ऋषि परम्परा के श्री आनन्दऋषि जी महाराज श्रमणसंघ के द्वितय पट्टधर हुए । आप गुजरात,राजस्थान, दिल्ली हरियाणा,पंजाब एवं जम्मू तक जैन धर्म का डंका बजाते हुए वापिस महाराष्ट्र पहुँचे आपने एक वृहद्ध साधुसम्मेलन बन्बई में बुलाया जिसमें श्री देवन्द्रमुनि जी को उपाचार्य और श्री शिवमुनि जी को युवाचार्य घोषित किया । आजकल श्री शिवमुनि जी महाराज चतुर्थ श्रमण संघ आचार्य सम्राट के पद को विभूषित कर रहें हैं। इनकी छत्रछाया में श्रमणसंघ फलफूल रहा है और संघ एकता बनाए रखने में सफल रहे । आप मलोट पंजाब के एक समृद्ध परिवार से एम ए कर विदेश गये परन्तु वैराग्य ने इन्हे विचलित नहीं होने दिया संयम धारण कर पी.एच. डी और डी.लिट तक ज्ञान अर्जित किया और ध्यानसाधना के महा योगी बने । समस्त श्रमण-श्रमणियो को एवं श्रावक वर्ग को ध्यान के लिए प्रेरित करते हैं । आप ने इन्दोर साधु-सम्मेलन किया जिसमें प्रवर्तक श्री सुमन मुनि जी शांतिरक्षक नियुक्त हुए और विचार विमर्श से श्री माहेन्द्रऋषि जी को युवाचार्य घोषित किया । आप महावीर शासन के नायक और अरहंत श्री सीमंधर स्वामी के महान उपासक हैं । मेरी यह मंगल कामना है कि आप श्री लम्बे समय तक समाज का नेतृत्व करते रहें ।

कोटिश वन्दन के साथ कुछ गलत लिखा गया हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ ।

****

कुछ रोचक तथ्य

उज्जैयन में आचार्य सिद्धसेन कल्याण मन्दिर स्तोत्र के रचयिता महाकालेश्वर मन्दिर में जा कर शिवलिंग की तरफ पांव फैलाकर लेट गये । प्रतःकाल जब मन्दिर के पुजारियों ने देखा तो उन्होंने सिद्धसेन को वहां से हट जाने को कहा , बहुत कुच कहा-सुना परन्तु उन पर कोई प्रभाव न पड़ा तब पुजारियों ने राजा को अवगत करवाया। राजा ने अदेश दिया कि इसको कोड़े मार कर बाहर निकाल दो, कोड़े मारना आरम्भ हुआ परन्तु आचार्य सिद्धसेन को लग नही रहे सभी विस्मित हो गये कि योगी के शरीर कैसा है। इस अद्भुत घटना से राजा विक्रमादित्य को अवगत करवाया गया, तब तत्काल विक्रमादित्य स्वयं महाकाल मन्दिर आ कर योगी से कहने लगे- महात्मन्- आप इस प्रकार शिवलिंग की अवेहलना क्यों कर रहे हैं,, आप को तो प्रणाम् करना चाहिए।

आचार्य सिद्धसेन-राजन् आपका यह क्रे शिवलिंग मेरा नमस्कार सहन नहीं कर सकेगा। राजा के बार-बार अग्रह करने पर आचार्य सिद्धसेन ने महादेव की सच्चे स्वरुप में स्तुति प्रारम्भ की, अभी कुछ ही श्लोक पढ़े की अद्भुत तेज के साथ भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हो गई । राजा

विक्रमादित्य चमत्कार से प्रभावित हो आचार्य सिद्धसेन के परम भक्त बन गये । सात वर्षों में 18 राजाओं को प्रतिबोध देकर जैन धर्म अनुरागी बनाया ।

****

भगवान विष्णु के 24 अवतार कौन से हैं

- **-वेदिकसाहित्य**

जब-जब पृथ्वी पर कोई संकट आता है तो भगवान अवतार लेकर उस संकट को दूर करते हैं। भगवान शिव और भगवान विष्णु ने कई बार पृथ्वी पर अवतार लिया है। भगवान विष्णु के 24 वें अवतार के बारे में कहा जाता है कि 'कल्कि अवतार'के रूप में उनका आना सुनिश्चित है। उनके 23 अवतार अब तक पृथ्वी पर अवतरित हो चुके हैं। इन 24 अवतार में से 10 अवतार विष्णु जी के मुख्य अवतार माने जाते हैं। यह है मत्स्य अवतार कूर्म अवतार वराह अवतार नृसिंह अवतारवामन अवतार परशुराम अवतार राम अवतार. कृष्ण अवतार बुद्ध अवतार कल्कि अवतार। आइए जानें विस्तार से.... 1- श्री सनकादि मुनि धर्म ग्रंथों के अनुसार सृष्टि के आरंभ में लोक पितामह ब्रह्मा ने अनेक लोकों की रचना करने की इच्छा से घोर तपस्या की। उनके तप से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने तप अर्थ वाले सन नाम से युक्त होकर सनक सनन्दन सनातन और सनत्कुमार नाम के चार मुनियों के रूप में अवतार लिया। ये चारों प्राकट्य काल

से ही मोक्ष मार्ग परायण ध्यान में तल्लीन रहने वाले नित्यसिद्ध एवं नित्य विरक्त थे। ये भगवान विष्णु के सर्वप्रथम अवतार माने जाते हैं। 2- वराह अवतार : धर्म ग्रंथों के अनुसार भगवान विष्णु ने दूसरा अवतार वराह रूप में लिया था। वराह अवतार से जुड़ी कथा इस प्रकार है- पुरातन समय में दैत्य हिरण्याक्ष ने जब पृथ्वी को ले जाकर समुद्र में छिपा दिया तब ब्रह्मा की नाक से भगवान विष्णु वराह रूप में प्रकट हुए। भगवान विष्णु के इस रूप को देखकर सभी देवताओं व ऋषि-मुनियों ने उनकी स्तुति की। सबके आग्रह पर भगवान वराह ने पृथ्वी को ढूंढना प्रारंभ किया। अपनी थूथनी की सहायता से उन्होंने पृथ्वी का पता लगा लिया और समुद्र के अंदर जाकर अपने दांतों पर रखकर वे पृथ्वी को बाहर ले आए। जब हिरण्याक्ष दैत्य ने यह देखा तो उसने भगवान विष्णु के वराह रूप को युद्ध के लिए ललकारा। दोनों में भीषण युद्ध हुआ। अंत में भगवान वराह ने हिरण्याक्ष का वध कर दिया। इसके बाद भगवान वराह ने अपने खुरों से जल को स्तंभित कर उस पर पृथ्वी को स्थापित कर दिया। 3- नारद अवतार - धर्म ग्रंथों के अनुसार देवर्षि नारद भी भगवान विष्णु के ही अवतार हैं। शास्त्रों के अनुसार नारद मुनिब्रह्मा के सात मानस पुत्रों में से एक हैं। उन्होंने कठिन तपस्या से देवर्षि पद प्राप्त किया है। वे भगवान विष्णु के अनन्य भक्तों में से एक माने जाते हैं। देवर्षि नारद धर्म के प्रचार तथा लोक-कल्याण के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते हैं। शास्त्रों में देवर्षि नारद को

भगवान का मन भी कहा गया है। श्रीमद्भागवतगीता के दशम अध्याय के 26वें श्लोक में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने इनकी महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा है- देवर्षीणाम्चनारदः। अर्थात देवर्षियों में मैं नारद हूं। 4- नर-नारायण सृष्टि के आरंभ में भगवान विष्णु ने धर्म की स्थापना के लिए दो रूपों में अवतार लिया। इस अवतार में वे अपने मस्तक पर जटा धारण किए हुए थे। उनके हाथों में हंस चरणों में चक्र एवं वक्षःस्थल में श्रीवत्स के चिन्ह थे। उनका संपूर्ण वेष तपस्वियों के समान था। धर्म ग्रंथों के अनुसार भगवान विष्णु ने नस्नारायण के रूप में यह अवतार लिया था।5- कपिल मुनि भगवान विष्णु ने पांचवा अवतार कपिल मुनि के रूप में लिया। इनके पिता का नाम महर्षि कर्दम व माता का नाम देवहूति था। शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म पितामह के शरीर त्याग के समय वेदज्ञ व्यास आदि ऋषियों के साथ भगवा कपिल भी वहां उपस्थित थे। भगवान कपिल के क्रोध से ही राजा सगर के साठ हजार पुत्र भस्म हो गए थे। भगवान कपिल सांख्य दर्शन के प्रवर्तक हैं। कपिल मुनि भागवत धर्म के प्रमुख बारह आचार्यों में से एक हैं। 6- दत्तात्रेय अवतार - धर्म ग्रंथों के अनुसार दत्तात्रेय भी भगवान विष्णु के अवतार हैं। इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है- एक बार माता लक्ष्मी पार्वती व सरस्वती को अपने पातिव्रत्य पर अत्यंत गर्व हो गया। भगवान ने इनका अंहकार नष्ट करने के लिए लीला रची। उसके अनुसार एक दिन नारदजी घूमतेघूमते देवलोक पहुंचे

और तीनों देवियों को बारी-बारी जाकर कहा कि ऋषि अत्रि की पत्नी अनुसूइया के सामने आपका सतीत्व कुछ भी नहीं। तीनों देवियों ने यह बात अपने स्वामियों को बताई और उनसे कहा कि वे अनुसूइया के पातिव्रत्य की परीक्षा लें। तब भगवान शंकर विष्णु व ब्रह्मा साधु वेश बनाकर अत्रि मुनि के आश्रम आए। महर्षि अत्रि उस समय आश्रम में नहीं थे। तीनों ने देवी अनुसूइया से भिक्षा मांगी मगर यह भी कहा कि आपको निर्वस्त्र होकर हमें भिक्षा देनी होगी। अनुसूइया पहले तो यह सुनकर चौंक गई लेकिन फिर साधुओं का अपमान न हो इस डर से उन्होंने अपने पति का स्मरण किया और बोला कि यदि मेरा पातिव्रत्य धर्म सत्य है तो ये तीनों साधु छः-छः मास के शिशु हो जाएं। ऐसा बोलते ही त्रिदेव शिशु होकर रोने लगे। तब अनुसूइया ने माता बनकर उन्हें गोद में लेकर स्तनपान कराया और पालने में झूलाने लगीं। जब तीनों देव अपने स्थान पर नहीं लौटे तो देवियां व्याकुल हो गईं। तब नारद ने वहां आकर सारी बात बताई। तीनों देवियां अनुसूइया के पास आईं और क्षमा मांगी। तब देवी अनुसूइया ने त्रिदेव को अपने पूर्व रूप में कर दिया। प्रसन्न होकर त्रिदेव ने उन्हें वरदान दिया कि हम तीनों अपने अंश से तुम्हारे गर्भ से पुत्र रूप में जन्म लेंगे। तब ब्रह्मा के अंश से चंद्रमा शंकर के अंश से दुर्वासा और विष्णु के अंश से दत्तात्रेय का जन्म हुआ। 7- यज्ञ : भगवान विष्णु के सातवें अवतार का नाम यज्ञ है। धर्म ग्रंथों के अनुसार भगवान यज्ञ का जन्म स्वायम्भुव मन्वन्तर में

हुआ था। स्वायम्भुव मनु की पत्नी शतरूपा के गर्भ से आकूति का जन्म हुआ। वे रूचि प्रजापति की पत्नी हुई। इन्हीं आकूति के यहां भगवान विष्णु यज्ञ नाम से अवतरित हुए। भगवान यज्ञ के उनकी धर्मपत्नी दक्षिणा से अत्यंत तेजस्वी बारह पुत्र उत्पन्न हुए। वे ही स्वायम्भुव मन्वन्तर में याम नामक बारह देवता कहलाए। 8- भगवान ऋषभदेव - भगवान विष्णु ने ऋषभदेव के रूप में आठवां अवतार लिया। धर्म ग्रंथों के अनुसार महाराज नाभि की कोई संतान नहीं थी। इस कारण उन्होंने अपनी धर्मपत्नी मेरुदेवी के साथ पुत्र की कामना से यज्ञ किया। यज्ञ से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु स्वयं प्रकट हुए और उन्होंने महाराज नाभि को वरदान दिया कि मैं ही तुम्हारे यहां पुत्र रूप में जन्म लूंगा। वरदान स्वरूप कुछ समय बाद भगवान विष्णु महाराज नाभि के यहां पुत्र रूप में जन्मे। पुत्र के अत्यंत सुंदर सुगठित शरीर कीर्ति तेल बल ऐश्वर्य यश पराक्रम और शूरवीरता आदि गुणों को देखकर महाराज नाभि ने उसका नाम ऋषभ (श्रेष्ठ) रखा। 9- आदिराज पृथु भगवान विष्णु के एक अवतार का नाम आदिराज पृथु है। धर्म ग्रंथों के अनुसार स्वायम्भुव मनु के वंश में अंग नामक प्रजापति का विवाह मृत्यु की मानसिक पुत्री सुनीथा के साथ हुआ। उनके यहां वेन नामक पुत्र हुआ। उसने भगवान को मानने से इंकार कर दिया और स्वयं की पूजा करने के लिए कहा। तब महर्षियों ने मंत्र पूत कुशों से उसका वध कर दिया। तब महर्षियों ने पुत्रहीन राजा वेन की भुजाओं का मंथन किया

जिससे पृथु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। पृथु के दाहिने हाथ में चक्र और चरणों में कमल का चिह्न देखकर ऋषियों ने बताया कि पृथु के वेष में स्वयं श्रीहरि का अंश अवतरित हुआ है।10- मत्स्य अवतार पुराणों के अनुसार भगवान विष्णु ने सृष्टि को प्रलय से बचाने के लिए मत्स्यावतार लिया था। इसकी कथा इस प्रकार है- कृतयुग के आदि में राजा सत्यव्रत हुए। राजा सत्यव्रत एक दिन नदी में स्नान कर जलांजलि दे रहे थे। अचानक उनकी अंजलि में एक छोटी सी मछली आई। उन्होंने देखा तो सोचा वापस सागर में डाल दूं लेकिन उस मछली ने बोला- आप मुझे सागर में मत डालिए अन्यथा बड़ी मछलियां मुझे खा जाएंगी। तब राजा सत्यव्रत ने मछली को अपने कमंडल में रख लिया। मछली और बड़ी हो गई तो राजा ने उसे अपने सरोवर में रखा तब देखते ही देखते मछली और बड़ी हो गई। राजा को समझ आ गया कि यह कोई साधारण जीव नहीं है। राजा ने मछली से वास्तविक स्वरूप में आने की प्रार्थना की। राजा की प्रार्थना सुन साक्षात चारभुजाधारी भगवान विष्णु प्रकट हो गए और उन्होंने कहा कि ये मेरा मत्स्यावतार है। भगवान ने सत्यव्रत से कहा- सुनो राजा सत्यव्रत! आज से सात दिन बाद प्रलय होगी। तब मेरी प्रेरणा से एक विशाल नाव तुम्हारे पास आएगी। तुम सप्त ऋषियों औषधियों बीजों व प्राणियों के सूक्ष्म शरीर को लेकर उसमें बैठ जाना जब तुम्हारी नाव डगमगाने लगेगी तब मैं मत्स्य के रूप में तुम्हारे पास आऊंगा। उस समय तुम वासुकि नाग के द्वारा

उस नाव को मेरे सींग से बांध देना। उस समय प्रश्न पूछने पर मैं तुम्हें उत्तर दूंगा जिससे मेरी महिमा जो परब्रह्म नाम से विख्यात है तुम्हारे ह्रदय में प्रकट हो जाएगी। तब समय आने पर मत्स्यरूपधारी भगवान विष्णु ने राजा सत्यव्रत को तत्वज्ञान का उपदेश दिया जो मत्स्यपुराण नाम से प्रसिद्ध है।11- कूर्म अवतार :धर्म ग्रंथों के अनुसार भगवान विष्णु ने कूर्म (कछुए) का अवतार लेकर समुद्र मंथन में सहायता की थी। भगवान विष्णु के कूर्म अवतार को कच्छप अवतार भी कहते हैं। इसकी कथा इस प्रकार है- एक बार महर्षि दुर्वासा ने देवताओं के राजा इंद्र को श्राप देकर श्रीहीन कर दिया। इंद्र जब भगवान विष्णु के पास गए तो उन्होंने समुद्र मंथन करने के लिए कहा। तब इंद्र भगवान विष्णु के कहे अनुसार दैत्यों व देवताओं के साथ मिलकर समुद्र मंथन करने के लिए तैयार हो गए। समुद्र मंथन करने के लिए मंदराचल पर्वत को मथानी एवं नागराज वासुकि को नेती बनाया गया। देवताओं और दैत्यों ने अपना मतभेद भुलाकर मंदराचल को उखाड़ा और उसे समुद्र की ओर ले चले लेकिन वे उसे अधिक दूर तक नहीं ले जा सके। तब भगवान विष्णु ने मंदराचल को समुद्र तट पर रख दिया। देवता और दैत्यों ने मंदराचल को समुद्र में डालकर नागराज वासुकि को नेती बनाया। किंतु मंदराचल के नीचे कोई आधार नहीं होने के कारण वह समुद्र में डूबने लगा। यह देखकर भगवान विष्णु विशाल कूर्म (कछुए) का रूप धारण कर समुद्र में मंदराचल के आधार बन गए। भगवान कूर्म की विशाल पीठ पर

मंदराचल तेजी से घुमने लगा और इस प्रकार समुद्र मंथन संपन्न हुआ।12- भगवान धन्वन्तरि धर्म ग्रंथों के अनुसार जब देवताओं व दैत्यों ने मिलकर समुद्र मंथन किया तो उसमें से सबसे पहले भयंकर विष निकला जिसे भगवान शिव ने पी लिया। इसके बाद समुद्र मंथन से उच्चैश्रवा घोड़ा देवी लक्ष्मी ऐरावत हाथी कल्प वृक्षअप्सराएं और भी बहुत से रत्न निकले। सबसे अंत में भगवान धन्वन्तरि अमृत कलश लेकर प्रकट हुए। यही धन्वन्तरि भगवान विष्णु के अवतार माने गए हैं। इन्हें औषधियों का स्वामी भी माना गया है।13- मोहिनी अवतार धर्म ग्रंथों के अनुसार समुद्र मंथन के दौरान सबसे अंत में धन्वन्तरि अमृत कलश लेकर निकले। जैसे ही अमृत मिला अनुशासन भंग हुआ। देवताओं ने कहा हम ले लें दैत्यों ने कहा हम ले लें। इसी खींचातानी में इंद्र का पुत्र जयंत अमृत कुंभ लेकर भाग गया। सारे दैत्य व देवता भी उसके पीछे भागे। असुरों व देवताओं में भयंकर मार-काट मच गई। देवता परेशान होकर भगवान विष्णु के पास गए। तब भगवान विष्णु ने मोहिनी अवतार लिया। भगवान ने मोहिनी रूप में सबको मोहित कर दिया किया। मोहिनी ने देवता व असुर की बात सुनी और कहा कि यह अमृत कलश मुझे दे दीजिए तो मैं बारीबारी से देवता व असुर को अमृत का पान करा दूंगी। दोनों मान गए। देवता एक तरफ तथा असुर दूसरी तरफ बैठ गए। फिर मोहिनी रूप धरे भगवान विष्णु ने मधुर गान गाते हुए तथा नृत्य करते हुए देवता व असुरों को अमृत पान कराना प्रारंभ

किया । वास्तविकता में मोहिनी अमृत पान तो सिर्फ देवताओं को ही करा रही थी जबकि असुर समझ रहे थे कि वे भी अमृत पी रहे हैं। इस प्रकार भगवान विष्णु ने मोहिनी अवतार लेकर देवताओं का भला किया। 14- भगवान नृसिंह भगवान विष्णु ने नृसिंह अवतार लेकर दैत्यों के राजा हिरण्यकशिपु का वध किया था। इस अवतार की कथा इस प्रकार है- धर्म ग्रंथों के अनुसार दैत्यों का राजा हिरण्यकशिपु स्वयं को भगवान से भी अधिक बलवान मानता था। उसे मनुष्य, देवता, पक्षी, पशु न दिन में न रात में न धरती पर न आकाश में न अस्त्र से न शस्त्र से मरने का वरदान प्राप्त था। उसके राज में जो भी भगवान विष्णु की पूजा करता था उसको दंड दिया जाता था। उसके पुत्र का नाम प्रहलाद था। प्रहलाद बचपन से ही भगवान विष्णु का परम भक्त था। यह बात जब हिरण्यकशिपु का पता चली तो वह बहुत क्रोधित हुआ और प्रहलाद को समझाने का प्रयास किया लेकिन फिर भी जब प्रहलाद नहीं माना तो हिरण्यकशिपु ने उसे मृत्युदंड दे दिया। हर बार भगवान विष्णु के चमत्कार से वह बच गया। हिरण्यकशिपु की बहन होलिका जिसे अग्नि से न जलने का वरदान प्राप्त था वह प्रहलाद को लेकर धधकती हुई अग्नि में बैठ गई। तब भी भगवान विष्णु की कृपा से प्रहलाद बच गया और होलिका जल गई। जब हिरण्यकशिपु स्वयं प्रहलाद को मारने ही वाला था तब भगवान विष्णु नृसिंह का अवतार लेकर खंबे से प्रकट हुए और उन्होंने अपने नाखूनों से हिरण्यकशिपु का वध कर

दिया।15- वामन अवतार : सत्ययुग में प्रह्लाद के पौत्र दैत्यराज बलि ने स्वर्गलोक पर अधिकार कर लिया। सभी देवता इस विपत्ति से बचने के लिए भगवान विष्णु के पास गए। तब भगवान विष्णु ने कहा कि मैं स्वयं देवमाता अदिति के गर्भ से उत्पन्न होकर तुम्हें स्वर्ग का राज्य दिलाऊंगा। कुछ समय पश्चात भगवान विष्णु ने वामन अवतार लिया। एक बार जब बलि महान यज्ञ कर रहा था तब भगवान वामन बलि की यज्ञशाला में गए और राजा बलि से तीन पग धरती दान में मांगी। राजा बलि के गुरु शुक्राचार्य भगवान की लीला समझ गए और उन्होंने बलि को दान देने से मना कर दिया। लेकिन बलि ने फिर भी भगवान वामन को तीन पग धरती दान देने का संकल्प ले लिया। भगवान वामन ने विशाल रूप धारण कर एक पग में धरती और दूसरे पग में स्वर्ग लोक नाप लिया। जब तीसरा पग रखने के लिए कोई स्थान नहीं बचा तो बलि ने भगवान वामन को अपने सिर पर पग रखने को कहा। बलि के सिर पर पग रखने से वह सुतललोक पहुंच गया। बलि की दानवीरता देखकर भगवान ने उसे सुतललोक का स्वामी भी बना दिया। इस तरह भगवान वामन ने देवताओं की सहायता कर उन्हें स्वर्ग पुन: लौटाया। 16- हयग्रीव अवतार : धर्म ग्रंथों के अनुसार एक बार मधु और कैटभ नाम के दो शक्तिशाली राक्षस ब्रह्माजी से वेदों का हरण कर रसातल में पहुंच गए। वेदों का हरण हो जाने से ब्रह्माजी बहुत दुखी हुए और भगवान विष्णु के पास पहुंचे। तब भगवान ने

हयग्रीव अवतार लिया। इस अवतार में भगवान विष्णु की गर्दन और मुख घोड़े के समान थी। तब भगवान हयग्रीव रसातल में पहुंचे और मधुकैटभ का वध कर वेद पुन: भगवान ब्रह्मा को दे दिए।17- श्रीहरि अवतार : धर्म ग्रंथों के अनुसार प्राचीन समय में त्रिकूट नामक पर्वत की तराई में एक शक्तिशाली गजेंद्र अपनी हथिनियों के साथ रहता था। एक बार वह अपनी हथिनियों के साथ तालाब में स्नान करने गया। वहां एक मगरमच्छ ने उसका पैर पकड़ लिया और पानी के अंदर खींचने लगा। गजेंद्र और मगरमच्छ का संघर्ष एक हजार साल तक चलता रहा। अंत में गजेंद्र शिथिल पड़ गया और उसने भगवान श्रीहरि का ध्यान किया। गजेंद्र की स्तुति सुनकर भगवान श्रीहरि प्रकट हुए और उन्होंने अपने चक्र से मगरमच्छ का वध कर दिया। भगवान श्रीहरि ने गजेंद्र का उद्धार कर उसे अपना पार्षद बना लिया। 18- परशुराम अवतार हिंदू धर्म ग्रंथों के अनुसार परशुराम भगवान विष्णु के प्रमुख अवतारों में से एक थे। भगवान परशुराम के जन्म के संबंध में दो कथाएं प्रचलित हैं। हरिवंशपुराण के अनुसार उन्हीं में से एक कथा इस प्रकार है- प्राचीन समय में महिष्मती नगरी पर शक्तिशाली हैययवंशी क्षत्रिय कार्तवीर्य अर्जुन(सहस्त्रबाहु) का शासन था। वह बहुत अभिमानी था और अत्याचारी भी। एक बार अग्निदेव ने उससे भोजन कराने का आग्रह किया। तब सहस्त्रबाहु ने घमंड में आकर कहा कि आप जहां से चाहें भोजन प्राप्त कर सकते हैं सभी ओर मेरा ही राज है। तब

अग्निदेव ने वनों को जलाना शुरु किया। एक वन में ऋषि आपव तपस्या कर रहे थे। अग्नि ने उनके आश्रम को भी जला डाला। इससे क्रोधित होकर ऋषि ने सहस्त्रबाहु को श्राप दिया कि भगवान विष्णु परशुराम के रूप में जन्म लेंगे और न सिर्फ सहस्त्रबाहु का नहीं बल्कि समस्त क्षत्रियों का सर्वनाश करेंगे। इस प्रकार भगवान विष्णु ने भार्गव कुल में महर्षि जमदग्नि के पांचवें पुत्र के रूप में जन्म लिया।19- महर्षि वेदव्यास -पुराणों में महर्षि वेदव्यास को भी भगवान विष्णु का ही अंश माना गया है। भगवान व्यास नारायण के कलावतार थे। वे महाज्ञानी महर्षि पराशर के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। उनका जन्म कैवर्तराज की पोष्यपुत्री सत्यवती के गर्भ से यमुना के द्वीप पर हुआ था। उनके शरीर का रंग काला था। इसलिए उनका एक नाम कृष्णद्वैपायन भी था। इन्होंने ही मनुष्यों की आयु और शक्ति को देखते हुए वेदों के विभाग किए। इसलिए इन्हें वेदव्यास भी कहा जाता है। इन्होंने ही महाभारत ग्रंथ की रचना भी की 20- हंस अवतार - एक बार भगवान ब्रह्मा अपनी सभा में बैठे थे। तभी वहां उनके मानस पुत्र सनकादि पहुंचे और भगवान ब्रह्मा से मनुष्यों के मोक्ष के संबंध में चर्चा करने लगे। तभी वहां भगवान विष्णु महाहंस के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने सनकादि मुनियों के संदेह का निवारण किया। इसके बाद सभी ने भगवान हंस की पूजा की। इसके बाद महाहंसरूपधारी श्रीभगवान अदृश्य होकर अपने पवित्र धाम चले गए। 21- श्रीराम अवतार : त्रेतायुग में राक्षसराज रावण

का बहुत आतंक था। उससे देवता भी डरते थे। उसके वध के लिए भगवान विष्णु ने राजा दशरथ के यहां माता कौशल्या के गर्भ से पुत्र रूप में जन्म लिया। इस अवतार में भगवान विष्णु ने अनेक राक्षसों का वध किया और मर्यादा का पालन करते हुए अपना जीवन यापन किया। पिता के कहने पर वनवास गए। वनवास भोगते समय राक्षसराज रावण उनकी पत्नी सीता का हरण कर ले गया। सीता की खोज में भगवान लंका पहुंचे, वहां भगवान श्रीराम और रावण का घोर युद्ध जिसमें रावण मारा गया। इस प्रकार भगवान विष्णु ने राम अवतार लेकर देवताओं को भय मुक्त किया। 22- श्रीकृष्ण अवतार द्वापरयुग में भगवान विष्णु ने श्रीकृष्ण अवतार लेकर अधर्मियों का नाश किया। भगवान श्रीकृष्ण का जन्म कारागार में हुआ था। इनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम देवकी था। भगवान श्रीकृष्ण ने इस अवतार में अनेक चमत्कार किए और दुष्टों का सर्वनाश किया। कंस का वध भी भगवान श्रीकृष्ण ने ही किया। महाभारत के युद्ध में अर्जुन के सारथि बने और दुनिया को गीता का ज्ञान दिया। धर्मराज युधिष्ठिर को राजा बना कर धर्म की स्थापना की। भगवान विष्णु का ये अवतार सभी अवतारों में सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। 23- बुद्ध अवतार धर्म ग्रंथों के अनुसार बौद्धधर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध भी भगवान विष्णु के ही अवतार थे परंतु पुराणों में वर्णित भगवान बुद्धदेव का जन्म गया के समीप कीकट में हुआ बताया गया है और उनके पिता का नाम अजन बताया

गया है। यह प्रसंग पुराण वर्णित बुद्धावतार का ही है। एक समय दैत्यों की शक्ति बहुत बढ़ गई। देवता भी उनके भय से भागने लगे। राज्य की कामना से दैत्यों ने देवराज इंद्र से पूछा कि हमारा साम्राज्य स्थिर रहे, इसका उपाय क्या है। तब इंद्र ने शुद्ध भाव से बताया कि सुस्थिर शासन के लिए यज्ञ एवं वेदविहित आचरण आवश्यक है। तब दैत्य वैदिक आचरण एवं महायज्ञ करने लगे जिससे उनकी शक्ति और बढऩे लगी। तब सभी देवता भगवान विष्णु के पास गए। तब भगवान विष्णु ने देवताओं के हित के लिए बुद्ध का रूप धारण किया। उनके हाथ में मार्जनी थी और वे मार्ग को बुहारते हुए चलते थे इस प्रकार भगवान बुद्ध दैत्यों के पास पहुंचे और उन्हें उपदेश दिया कि यज्ञ करना पाप है। यज्ञ से जीव हिंसा होती है। यज्ञ की अग्नि से कितने ही प्राणी भस्म हो जाते हैं। भगवान बुद्ध के उपदेश से दैत्य प्रभावित हुए। उन्होंने यज्ञ व वैदिक आचरण करना छोड़ दिया। इसके कारण उनकी शक्ति कम हो गई और देवताओं ने उन पर हमला कर अपना राज्य पुन: प्राप्त कर लिया। 24- कल्कि अवतार - धर्म ग्रंथों के अनुसार कलयुग में भगवान विष्णु कल्कि रूप में अवतार लेंगे। कल्कि अवतार कलियुग व सतयुग के संधिकाल में होगा। यह अवतार 64 कलाओं से युक्त होगा। पुराणों के अनुसार उत्तरप्रदेश के मुरादाबाद जिले के शंभल नामक स्थान पर विष्णुयशा नामक तपस्वी ब्राह्मण के घर भगवान कल्कि पुत्र रूप में जन्म लेंगे।

कल्कि देवदत्त नामक घोड़े पर सवार होकर संसार से पापियों का विनाश करेंगे और धर्म की पुनःस्थापना करेंगे।

वेदों में जैन धर्म

ब्रह्मा विष्णु महेश शिव शंकर हरि जिननाम।
ऐसे आदि जिनेश थुति, पाने को शिवधाम॥

जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव और हिंदुओं के प्रथम देव भगवान शंकर में अद्भुत समानता है। आओ हम यहां जानते हैं कि कैसे और किस तरह ऋषभदेव और भगवान शंकर में समानता है।**********

1.दोनों ही प्रथम कहे गए हैं अर्थात आदिदेव।

2.दोनों ही जटाधारी और दिगंबर है। भार्तुहरी ने 'वैराग्य शतक' में शिव को दिगंबर लिखा है। वेदों में भी वे दिगंबर कहे गए हैं।

3.दोनों के लिए 'हर' शब्द का प्रयोग किया जाता है। आचार्य जिनसेन ने 'हर' शब्द का प्रयोग ऋषभदेव के लिए किया है।

4.दोनों को ही नाथों का नाथ आदिनाथ कहा जाता है।

5.दोनों ही कैलाशवासी है। ऋषभदेव ने कैलाश पर ही तपस्या कर कैवल्य प्राप्त किया था।

6.दोनों के ही दो प्रमुख पुत्र थे।

7.दोनों का ही संबंध नंदी बैल से है। ऋषभदेव का चरण चिन्ह बैल है।

8.शिव, पार्वती के संग है तो ऋषभ भी पार्वत्य वृत्ती के हैं।

9.दोनों मयुर पिच्छिकाधारी है।

10.दोनों की मान्यताओं में फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी और चतुर्दशी का महत्व है।

11.शिव चंद्रांकित है तो ऋषभ भी चंद्र जैसे मुखमंडल से सुशोभित

है।**********

हालांकि यहां यह सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया जा रहा है कि ऋषभदेव और भगवान शिव एक ही है। यहां उनकी समानता के बारे में कुछ बिन्दू दिए गए हैं जिन पर विचीर किए जाने की जरूरत है ।

****

शिव कह पूजे शैव, वैदान्ति ब्रह्मा कहते है।
बुद्ध, बोद्ध, जिन-जैन, वैष्णव दुःख हरि हरते हैं।
ईसा,मुस्लिम,गौड, खुदा कह बन्दगी करते हैं।
शुद्ध, बुद्ध तीर्थंकर को वन्दना करते हैं ।

.....पर्वर्तिनी श्री पार्वती जी महाराज

भगवान ऋषभदेव जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर-भागवतपुराण

जैन और हिन्दू दो अलग-अलग धर्म हैं, लेकिन दोनों ही एक ही कुल और खानदान से जन्मे धर्म हैं। भगवान ऋषभदेव स्वायंभुव मनु से 5वीं पीढ़ी में इस क्रम में हुए स्वायंभुव मनु, प्रियव्रत, अग्नीन्ध्र, नाभि और फिर ऋषभ। जैन धर्म में 24 तीर्थंकर हुए हैं। 24 तीर्थंकरों में से पहले तीर्थंकर भगवान

ऋषभदेव थे। ऋषभदेव को हिन्दू शास्त्रों में वृषभदेव कहा गया है। जानिए उनके बारे में ऐसे 10 रहस्य जिसे हर हिन्दू को भी जानना जरूरी है।1. भगवान विष्णु के 24 अवतारों का उल्लेख पुराणों में मिलता है। भगवान विष्णु ने ऋषभदेव के रूप में 8वां अवतार लिया था। ऋषभदेव महाराज नाभि और मेरुदेवी के पुत्र थे। दोनों द्वारा किए गए यज्ञ से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु स्वयं प्रकट हुए और उन्होंने महाराज नाभि को वरदान दिया कि मैं ही तुम्हारे यहां पुत्र रूप में जन्म लूंगा। यज्ञ में परम ऋषियों द्वारा प्रसन्न किए जाने पर, हे विष्णुदत्त, परीक्षित स्वयं श्रीभगवान विष्णु महाराज नाभि का प्रिय करने के लिए महारानी मेरुदेवी के गर्भ में आए। उन्होंने इस पवित्र शरीर का अवतार वातरशना श्रमण मुनियों के धर्मों को प्रकट करने की इच्छा से ग्रहण किया-भागवत पुराण। 2. भगवान शिव और ऋषभदेव की वेशभूषा और चरित्र में लगभग समानता है। दोनों ही प्रथम कहे गए हैं अर्थात आदिदेव। दोनों को ही नाथों का नाथ आदिनाथ कहा जाता है। दोनों ही जटाधारी और दिगंबर हैं। दोनों के लिए 'हर' शब्द का प्रयोग किया जाता है। आचार्य जिनसेन ने 'हर' शब्द का प्रयोग ऋषभदेव के लिए किया है। दोनों ही कैलाशवासी हैं। ऋषभदेव ने कैलाश पर्वत पर ही तपस्या कर कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था। दोनों के ही दो प्रमुख पुत्र थे। दोनों का ही संबंध नंदी बैल से है। ऋषभदेव का चरण चिन्ह बैल है। शिव, पार्वती के संग हैं तो ऋषभ

भी पार्वत्य वृत्ती के हैं। दोनों ही मयूर पिच्छिकाधारी हैं। दोनों की मान्यताओं में फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी और चतुर्दशी का महत्व है। शिव चंद्रांकित है तो ऋषभ भी चंद्र जैसे मुखमंडल से सुशोभित है। 3. आर्य और द्रविड़ में किसी भी प्रकार का फर्क नहीं है, यह डीएनए और पुरातात्विक शोध से सिद्ध हो चुका है। सिंधु घाटी की मूर्तियों में बैल की आकृतियों वाली मूर्ति को भगवान ऋषभनाथ से जोड़कर इसलिए देखा जाता। मोहन जोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त मोहरों में जो मुद्रा अंकित है, वह मथुरा की ऋषभदेव की मूर्ति के समान है व मुद्रा के नीचे ऋषभदेव का सूचक बैल का चिह्न भी मिलता है। मुद्रा के चित्रण को चक्रवर्ती सम्राट भरत से जोड़कर देखा जाता है। इसमें दाईं ओर नग्न कायोत्सर्ग मुद्रा में भगवान ऋषभदेव हैं जिनके शिरोभाग पर एक त्रिशूल है, जो त्रिरत्नत्रय जीवन का प्रतीक है। निकट ही शीश झुकाए उनके ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत हैं, जो उष्णीब धारण किए हुए राजसी ठाठ में हैं। भरत के पीछे एक बैल है, जो ऋषभनाथ का चिन्ह है। अधोभाग में 7 प्रधान अमात्य हैं। हालांकि हिन्दू मान्यता अनुसार इस मुद्रा में राजा दक्ष का सिर भगवान शंकर के सामने रखा है और उस सिर के पास वीरभद्र शीश झुकाए बैठे हैं। यह सती के यज्ञ में दाह होने के बाद का चित्रण है। 4. अयोध्या के राजा नाभिराज के पुत्र ऋषभ अपने पिता की मृत्यु के बाद राजसिंहासन पर बैठे। युवा होने पर कच्छ और महाकच्छ

की 2 बहनों यशस्वती (या नंदा) और सुनंदा से ऋषभनाथ का विवाह हुआ। नंदा ने भरत को जन्म दिया, जो आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट बना। उसी के नाम पर हमारे देश का नाम 'भारत' पड़ा। सुनंदा ने बाहुबली को जन्म दिया जिन्होंने घनघोर तप किया और अनेक सिद्धियां प्राप्त कीं। इस प्रकार आदिनाथ ऋषभनाथ 100 पुत्रों और ब्राह्मी तथा सुंदरी नामक 2 पुत्रियों के पिता बने।

5. उन्होंने कृषि, शिल्प, असि (सैन्य शक्ति), मसि (परिश्रम), वाणिज्य और विद्या- इन 6 आजीविका के साधनों की विशेष रूप से व्यवस्था की तथा देश व नगरों एवं वर्ण व जातियों आदि का सुविभाजन किया। इनके 2 पुत्र भरत और बाहुबली तथा 2 पुत्रियां ब्राह्मी और सुंदरी थीं जिन्हें उन्होंने समस्त कलाएं व विद्याएं सिखाईं। इसी कुल में आगे चलकर इक्ष्वाकु हुए और इक्ष्वाकु के कुल में भगवान राम हुए। ऋषभदेव की मानव मनोविज्ञान में गहरी रुचि थी। उन्होंने शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के साथ लोगों को श्रम करना सिखाया। इससे पूर्व लोग प्रकृति पर ही निर्भर थे। वृक्ष को ही अपने भोजन और अन्य सुविधाओं का साधन मानते थे और समूह में रहते थे। ऋषभदेव ने पहली दफा कृषि उपज को सिखाया। उन्होंने भाषा का सुव्यवस्थीकरण कर लिखने के उपकरण के साथ संख्याओं का आविष्कार किया। नगरों का निर्माण किया।

6. उन्होंने बर्तन बनाना, स्थापत्य कला, शिल्प, संगीत, नृत्य

और आत्मरक्षा के लिए शरीर को मजबूत करने के गुर सिखाए, साथ ही सामाजिक सुरक्षा और दंड संहिता की प्रणाली की स्थापना की। उन्होंने दान और सेवा का महत्व समझाया। जब तक राजा थे उन्होंने गरीब जनता, संन्यासियों और बीमार लोगों का ध्यान रखा। उन्होंने चिकित्सा की खोज में भी लोगों की मदद की। नई-नई विद्याओं को खोजने के प्रति लोगों को प्रोत्साहित किया। भगवान ऋषभदेव ने मानव समाज को सभ्य और संपन्न बनाने में जो योगदान दिया है, उसके महत्व को सभी धर्मों के लोगों को समझने की आवश्यकता है।

7. एक दिन राजसभा में नीलांजना नाम की नर्तकी की नृत्य करतेकरते ही मृत्यु हो गई। इस घटना से ऋषभदेव को संसार से वैराग्य हो गया और वे राज्य और समाज की नीति और नियम की शिक्षा देने के बाद राज्य का परित्याग कर तपस्या करने वन चले गए। उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत राजा हुए और उन्होंने अपने दिग्विजय अभियान द्वारा सर्वप्रथम चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। भरत के लघु भ्राता बाहुबली भी विरक्त होकर तपस्या में प्रवृत्त हो गए। राजा भरत के नाम पर ही संपूर्ण जम्बूद्वीप को भारतवर्ष कहा जाने लगा। अंततः ऋषभदेव के बाद उनके पुत्र भरत ने जहां पिता द्वारा प्रदत्त राजनीति और समाज के विकास और व्यवस्थीकरण के लिए कार्य किया, वहीं उनके दूसरे पुत्र भगवान बाहुबली ने पिता की श्रमण परंपरा को विस्तार

दिया। 8. ऋग्वेद में ऋषभदेव की चर्चा वृषभनाथ और कहीं-कहीं वातरशना मुनि के नाम से की गई है। शिव महापुराण में उन्हें शिव के 28 योगावतारों में गिना गया है। अंतत: माना यह जाता है कि ऋषभनाथ से ही श्रमण परंपरा की व्यवस्थित शुरुआत हुई और इन्हीं से सिद्धों नाथों तथा शैव परंपरा के अन्य मार्गों की शुरुआत भी मानी गई है। इसलिए ऋषभनाथ जितने जैनियों के लिए महत्वपूर्ण हैं, उतने ही हिन्दुओं के लिए भी परम आदरणीय इतिहास पुरुष रहे हैं। हिन्दू और जैन धर्म के इतिहास में यह एक मील का पत्थर है। 9. ऋषभनाथ नग्न रहते थे। अपने कठोर तपश्चर्या द्वारा कैलाश पर्वत क्षेत्र में उन्हें माघ कृष्ण-14 को कैवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ तथा उन्होंने दक्षिण कर्नाटक तक नाना प्रदेशों में परिभ्रमण किया। वे कुटकाचल पर्वत के वन में नग्न रूप में विचरण करते थे। उन्होंने भ्रमण के दौरान लोगों को धर्म और नीति की शिक्षा दी। उन्होंने अपने जीवनकाल में 4,000 लोगों को दीक्षा दी थी। भिक्षा मांगकर खाने का प्रचलन उन्हीं से शुरू हुआ माना जाता है। इति।10. जैन मान्यता है कि पूर्णता प्राप्त करने से पूर्व तक तीर्थंकर मौन रहते हैं अत: आदिनाथ को 1 वर्ष तक भूखे रहना पड़ा। इसके बाद वे अपने पौत्र श्रेयांश के राज्य हस्तिनापुर पहुंचे। श्रेयांस ने उन्हें गन्ने का रस भेंट किया जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। वह दिन आज भी 'अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध है। हस्तिनापुर में आज भी जैन धर्मावलंबी

इस दिन गन्ने का रस पीकर अपना उपवास तोड़ते हैं। इस प्रकार कठोर तप करके ऋषभनाथ को कैवल्य ज्ञान (भूत, भविष्य और वर्तमान का संपूर्ण ज्ञान) प्राप्त हुआ। वे जिनेन्द्र बन गए। अपनी आयु के 14 दिन शेष रहने पर भगवान ऋषभनाथ हिमालय पर्वत के कैलाश शिखर पर समाधिलीन हो गए और वहीं माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन उन्होंने निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त किया।

भारतीय पुराणों के आधार पर भगवान ऋषभदेव का जन्म वृत्तांत जैन धर्म से भिन्न है, जैनधर्म भगवान ऋषभदेव का जीव पूर्वभव में वज्रनाभजी का जीव, सवार्थसिद्ध महाविमान में 33 सागरोपम की आयु पूर्ण कर के नाभि कुलकर की मरुदेवी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुआ, तीसरे आरे के चौरासी लाख पूर्व और 89 पक्ष शेष रहे, तब आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को उत्तराषाड़ा नक्षत्र में चन्द्र का योग होने पर माता मरुदेवी ने चौदह महास्वप्न देखे । जबकि पुराण विष्णु का अवतार मानते हैं । वैदिक संस्कृति अनुसार विष्णु जी जब जब संकट आते है तब भूमि पर अवतरण होते हैं, वह भगवान राम को भी विष्णु का अवतार मानते हैं। जब भगवान ऋषभदेव का मोक्ष तो मानते हैं तो मोक्ष से जीव कभी
वापिस मृत्युलोक में नहीं आता । इस विषय पर पूर्णतयः सहमत नहीं .। ..... स्वतन्त्र जैन

कुछ इतिहासकार अहिंसा को कायरता मानते हैं

अहिंसा कायरता नहीं जो भगवान महावीर ने हमको रास्ता दिखाया, चाहे दुनिया इसको कायरता माने वह हंकार के नशे में यह कह देते हैं। इसी रास्ते को अपना कर महात्मा गांधी ने विदेशियों से भारत मुक्त करवाया । हिंसा पाप है इसको अन्य मताविलम्बी भी मानते हैं, निस्संदेह आज सारा संसार ही पापों की ओर झुक रहा है । विश्व के सभी प्रमुख देश विनाशलीला रचने की होड़ में घातक परमाणु अस्त्रों के संग्रह में लगे हुए हैं । हमारा पड़ोसी देश जो इस्लाम का मानने वाला है, वह जिहाद के नाम पर इस्लाम पर ही जुल्म ढ़हा रहा है, इसका फल भी कड़वा ही मिलेगा, कोई भी जाति व मत इसको मीठा नहीं बना सकती। सभी धर्माचार्यों ने इस को मुख्य पाप बताया है। यदि मुसलमान विद्वानों के आचारों और विचारों पर ध्यान दिया जाए तो मालूम होता है कि वह दया के पवित्र गुणों से पृथक नहीं । यदि कोई निष्ठुर अपने अंहकार के मद में विनाशलीला रचे तो वह अपने दयावान पूर्वजों के सत्कर्मों के विपरीत अपना सवार्थ सिद्ध करने में लगा है । इस्लाम में यह रीति है कि अपने छोटे बच्चे को ही **बिस्मिल अल रहमान उल रहीम** का कल्मा सिखाते हैं । जिस का मतलब है कि वह अल्लातालाह के गुणों से अपरिचित न रहे, अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम हैं, पापीयों को

क्षमा और दया करने वाले हैं । अन्यायी और निष्ठुर इन्सानों के निर्मूल विचारों से इस्लाम धर्म दृष्टि हीन समझा जाता है ।

एक बार हज़रत अयूब जिन के शरीर में कीड़े पड़ गये, उन्हों ने अल्लाह के उन सर्वोत्कृष्ट गुणों का जिन का वर्णन कल्में में किया गया है-ऐसे कष्ट के समय भी नहीं छोड़ा, जो कीड़ा नीचे गिर जाता था, वह सावधानी से उठा कर अपने घाव पर छोड़ देते थे, इस विचार से की कीड़े को खुराक न मिलने से कहीं मर न जावे, जब उन से पूछा गया कि ऐसा क्यों ?- तो उत्तर दिया- अल्लाह (अल्लातालह) ने इनकी खुराक मेरा शरीर ही बनाया है, क्या मैं इन्हें जिलावतन (निर्वासित) करूँ ? वह अपने आप स्वस्थ हो गये।

.....(रोजता उला सि फया)

एक मुस्लिम शायर ने लिखा है-

कबरऐ होशमन्द, किहों दफन जिस्में चारिन्दों पारिन्द ।

लातजालो बतुने कुम कबूरउल हैवानात्

तुम अपने पेटों को हेवानों की कबरे मत बनाओ । न तू गोस्त खा न शराब पी ।

यके सीरत नेकमरदां शनो,अगरने मरदी वा पकीजाह रूके जहानूत

हे मनुष्य यदि तू भला आदमी और शुद्धात्मा है तो तू भले पुरुष के गुणों को सुन ।

बाबा फरीद साहिब कई वर्षों की वन में तपस्या कर घर लौटे तो माता ने पूछा- बेटा तू वन में क्या खाता था ? तब फरीद ने उत्तर दिया जब बहुत भूख लगती थी तो पत्ते तोड़ कर खा लेता था । तब माता ने उस के सिर का एक बाल नोचा तो मूँह से हाय निकला । माता झिझक कर बोली- जिन वृक्षों के पत्ते तोड़ कर खाता था, क्या वह वृक्ष दुःख पा कर नहीं रोये होंगे ? तब बाबा फरीद फिर जंगल में लौट गया और सूखे गिरे हुए पत्ते ही खाने लगा । सब्जी में भी जीव माना है।

किसी फारसी के कवि ने लिखा है-

इफ्तदो हफ्ताद कालब अरदह अम,बारहा दरसवजा रूहीदहा अम।।

यह 84 लाख योनियों में कालब (देहधारी) जन्म किये, कई बार सब्जी में मेरी रूह पैदा हुई ।

शेख सादी फरमाते हैं-

जेरे पायल ग़र बिदानी हाले मोर,हम चूँ हाले तुस्त ज़ेरे पापफील।

एक चींटी को अपने पैर के नीचे आने को ऐसा जान, जैसे तूँ हाथी के पांव नीचे आ गया है । हाथी के पांव तले आने से जो तेरी दशा होगी वही चींटी की तेरे पांव तले होगी।

फरदौसी साहिब फरमाते हैं-

चःषुश गुफ्त फारदौसी पाक जाद कि रहमत बरां तर बुत पाक बाद ।

जाँ मयाजरूह हरचाः रूबाही कुन, कि दरशारीयत भागीर जीन गुनाहे नेस्त्र ।।

किसी भी प्राणधारी को मत सताओ, काम जो चाहो तुम करो। क्यों कि इस से बढ़ कर हमारे धर्म में और कोई पाप नहीं । इससे सिद्ध होता है कि मुस्लिम न्याय प्रिय धर्म है । आज हम जो अपनी मरजी जिहाद के नाम संसार में कत्लेआम करे, परन्तु कोई भी धर्म ऐसा आदेश नहीं देता। अहिंसा को सब ने श्रेष्ठ माना है ।

कबीर जी फरमाते है-

उन झटका उन बिस्मिल कीता दया दोहां से भागी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, आग दोहां घर लागी ।।

श्री गुरुनानकदेव जी की सम्मति-

जिस रसोई चे चढ़या मांस, दया धर्म दा होया नास।

श्री गुरु ग्रन्थसाहिब-

प्रीतम जान लियो जग माहिं ।
अपने सुख से ही जग बांध्यों, कोउ काहू को नाहिं ।।
सुख में आन बहुत मिल बैठत, रहत चहूँ दिस घेरे ।
विपत पड़े सब ही संग छोड़त कोउ न आवत नेरे ।।
घर की नार बहुत दिन जासौ, रहत सदा संग लागी ?
जब ही हंस तजी यह काया, प्रेत प्रेत कह भागी ।।
इह विध का व्यवहार बान्यो है, जासो नेह लगायो ।

अन्त वार नानक दिन हरि जी, कोउ काम न आयो ।।

दुःख में कोई साथी नहीं सब स्वार्थी है । केवल अन्त समय परमात्मा के बिना कोई काम नहीं आवे ।

****

आचार्य उमा स्वति

श्वेताम्बरीय साहित्य में अलबत्ता लिखा है कि न्यग्रोधिका नामक स्थान में उनका जन्म हुआ, उनके पिता स्वाति और माता वात्सी थीं। उनका गोत्र गौभीषणि था। उनके दीक्षागुरु घोषनन्दि और विद्यागुरु वाचकाचार्य मूल नामक थे। उन्होंने कुसुमपुर में ''तत्त्वार्थसूत्र' को रचा था। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही उनके 'वाचक' पदवी से विभूषित प्रकट करते हैं। श्वेताम्बर जैनों का कहना है कि उन्होंने पाँच सौ ग्रंथ रचे हैं किन्तु आजकल तो उनके रचे हुए एक–दो ग्रंथ मिलते हैं। जो हो, इसमें शक नहीं कि वह एक महान् मेधावी और प्रख्यात आचार्य थे। उपरांतकाल के बड़े–बड़े आचार्यों ने उनका स्मरण आदरपूर्वक किया है और उन्हें 'श्रुतकेवलिदेशीय एवं 'गुणगम्भीर' लिखा है। टीकाकार श्रुतसागरजी ने उनका श्रुतिमधुर नाम उमास्वामी रख दिया। तब से दिगम्बरों में वह इसी प्रिय नाम से प्रचलित हो गए। वैसे प्राचीन दिगम्बर जैन ग्रंथों में उनका नाम स्वामी मिलता है। उनकी सैद्धान्तिक विवेचना शैली जिसका साम्य 'योग्यसूत्र' आदि से है एवं उनकी सर्वमान्यता से स्पष्ट है कि वह ईस्वी पहली शताब्दी के विद्वान थे। उनकी

सर्वतोमुखी विद्वत्ता और ज्ञानगम्भीरता का प्रतीक प्रस्तुत रचना है। तत्वार्थसूत्र जस्टिस जैनी ने "तत्त्वार्थसूत्र" को 'जैन बाइबिल' ठीक ही कहा था, क्योंकि वह सभी सम्प्रदायों के जैनों को मान्य है तथा उसमें सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान के अनन्तज्ञान का सार भरा हुआ है। जिनवाणी मुख्यत: चार अनुयोगों अर्थात् (१) प्रथमानुयोग—पुराण और इतिहास,(२) चरणानुयोग—चारित्र और नीति,(३) करणानुयोग—लोक रचना और स्वरूप,(४) द्रव्यानुयोग तत्त्व और सिद्धान्त में विभक्त है और "तत्त्वार्थसूत्र" में इन चारों ही अनुयोगों का समावेश हुआ मिलता है इसलिए उसको 'जैन बाइबिल' कहना सार्थक है। "तत्त्वार्थसूत्र" की एक विशेषता यह है कि उसमें वस्तुस्वरूप का निरूपण वैज्ञानिक शैली पर किया गया है। उसका आधार सर्वज्ञ का अनन्तज्ञान है और उसका प्रकाश आचार्यश्री के अपूर्व क्षयोपशम का चमत्कार है। कदाचित् उसकी तुलना आधुनिक वस्तुविज्ञान, मनोविज्ञान, तर्क, गणित आदि से की जावे, तो उसकी समानता देखकर पाठक आश्चर्य करेंगे। वैसे यह तो मानी हुई बात है कि आधुनिक विज्ञानवेत्ता अपने निर्णय को उस विषय का अन्तिम निर्णय नहीं मानते और ऐसा मानना ठीक भी है, क्योंकि सत्य का सर्वांगीण अनुभव एक सर्वज्ञ–सर्वदर्शी आप्त के लिए ही सम्भव है। आधुनिक विज्ञानवेत्ता उस निखिल सत्य के एक अंश को खोजते और उसके लक्ष्य को पाने का प्रयास करते

हैं। अत: उनके निर्णय प्राय: सत्य के अनुरूप होते हैं। इस रूप में उनका सामंजस्य जिनसिद्धान्त की खोज के लिए ठीक दिशा का भान कराने में सहायक सिद्ध हो सकता है। अत: यहाँ पर हम संक्षेप में "तत्त्वार्थसूत्र' के विषयों पर तुलनात्मक रूप में दृष्टिपात कर लेना उचित समझते हैं। इससे विज्ञ—पाठक इस तथ्य को समझ्ज्ञ सकेगे कि आधुनिक युग के अनुरूप एक वैज्ञानिक तुलनात्मक शैली पर रचा गया भाष्य कितना आवश्यक है ?

संसार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। सुख बन्धन में नहीं, आत्मस्वांतत्रय में है, क्योंकि वह जीव का जिनस्वभाव है। अत: मानव को सबसे पहले सच्ची श्रद्धा होना चाहिए; तभी वह सच्चे ज्ञान को पा सकेगा। केवल ज्ञान को ही मुक्ति का साधन मानना अथवा मात्र बाह्य क्रियाओं में फसे रहकर ही मुक्ति होने की लानसा करना लाभप्रद नहीं है। जीव के स्वरूप और उसके संसारी बन्धन में मुक्त होने की दृढ़ श्रद्धा जब तक नहीं होगी, तब तक सच्चा ज्ञान नहीं हो सकेगा। ज्ञान से सन्मार्ग का बोध हो जाने पर यदि उस पर चला नहीं जावेगा तो भी मुक्ति पाना, सुखी होना एक स्वप्न ही रहेगा। क्योंकि 'पराण्धीन सपनेहु सुख नाहीं। इसीलिए "तत्त्वार्थसूत्र" में सम्यक्दर्शन (श्रद्धा), ज्ञान और चारित्र रूप रत्नत्रय को मोक्षमार्ग ठीक ही कहा है।

आधुनिक युग जनस्वातंत्रय का युग है-यह सर्वविदित है। अत: पहले अध्याय में मोक्षमार्ग की सिद्धि के लिए सात तत्त्व, रत्नत्रयधर्म, पाँच ज्ञान और नय—निक्षेपों का वर्णन करके जिज्ञासु को तत्त्वबोध पाने के योग्य ज्ञान दिया गया है। 'सर्वज्ञ का वचन है, अत: आँख मींचकर श्रद्धा करो' यह जैनधर्म नहीं कहता। वह पहले ही जिज्ञासु को तत्त्वों का एवं उनकी सिद्धि के लिए प्रमाण और नयों का बोध कराता है; जिससे व्यक्ति को आत्मस्वातंत्रय मिल सकता है। लोक में अनादिनिधन सात तत्त्व हैं जिनमें मुख्य जीव और अजीव हैं। इन जीव और अजीव—चेतन और जड़ तत्त्वों को हर कोई अपनी आँख से देखता है। लोक में सारा खेल इन दो के ही कारण हो रहा है। इन दो के नाना रूपों को समझने के लिए पहले प्रमाण—निक्षेप और नय का ज्ञान कराया गया है। जिज्ञासु स्वसमय (अपने आत्मस्वरूप) को जाने और पर समय (अजीवादि के स्वरूप) को भी जाने और फिर उभय समयवर्ती होकर दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करें, तब वह ठीक से वस्तुस्वरूप को समझ सकता है। उसे एकांत का पक्ष या हठ नहीं होना चाहिए। जैनधर्म अनेकांतात्मक धर्म है। इसीलिये उसका न्याय अद्भुत और पारस्परिक विरोध को मिटाने वाला है। अमेरिका के प्रो. ब्रह्म ने कहा कि विश्वशांति के लिए अनेकांत का प्रचार करना आवश्यक है। डॉ. सतीशचन्द्र जी विद्याभूषण का कहना है कि 'न्याय और

अध्यात्म विद्या में जैनों ने बड़े ही ऊँचे विकास और क्रम को धारण किया था। सन् ईस्वी की पहली शताब्दी में प्रसिद्ध होने वाले श्री उमास्वामी के जोड़ के अध्यात्मविद्या—विशारद या छठी शताब्दी के सिद्धसेन दिवाकर और ८वीं शताब्दी के अकलंकदेव के बराबर के नैयायिक इस भारत भूमि पर अधिक नहीं हुए हैं। न्यायदर्शन, जिसे ब्राह्मण ऋषि गौतम ने चलाया है, अध्यात्मविद्या के रूप में असम्भव हो जाता, यदि जैनी और बौद्ध न्याय का यथार्थ और सत्याकृति से अध्ययन न करते।" किन्तु खेद है कि आज जैन स्वयं कूपमंडूकता में फस गए हैं—जैन मन्दिरों में शास्त्रसभा की पुरातन शैली का अन्त सा हो जाने के कारण समाज में तत्त्वबोध और सम्यग्प्रवृत्ति का घोर ह्रास हो रहा है। जैनों को सबसे पहले पहले अध्याय का ठीक से अध्ययन करना आवश्यक है।

जीव पुद्गल से भिन्न एक अर्पाथिव (Immaterial) द्रव्य हैं, इसलिए वह इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। फिर भी जीव कर्मबन्धन में पड़े हुए संसार में रुल रहे हैं उनको हम पहिचान सकते हैं। जो जीता है और जानदार है, वह जीव है, व्यवहार दृष्टि से इसीलिए पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने जीव का लक्षण इस प्रकार लिखा है—

"पाणेहि चदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण, बलिंमदियमाउ उस्सासो।।"

अर्थात्—जीव वह है जो चार प्राणों द्वारा जी रहा है, जीता था और जीता रहेगा। वे चार प्राण बल, इंद्रिय, आयु और श्वासोश्वास हैं किन्तु जब जीव का लोक—व्यवहार और संसार समाप्त होता है तो वह अपने शुद्ध रूप में चमकता है। अत: शुद्ध रूप में निश्चयनय (Realistic Viewpoint) की अपेक्षा जीव का लक्षण उपयोग—चेतना है, जो दर्शन और ज्ञान रूप है। इसलिए जो देखता और जानता है वह जीव है। श्री उमास्वामी ने भी उपयोग को ही जीव का लक्षण बताया है, किन्तु उन्होंने पहले सूत्र में जीव के औपशमिक, क्षायोपशमिकादि भावों का उल्लेख इसीलिए किया है कि जीवतत्त्व स्वसंवेदन अनुभूति द्वारा ही पहिचाना जाता है। अधुना यह कहा जाता है कि 'वी फील अवरसेल्वस देयर फोर वी आर।' अर्थात् हम अपने आपका अनुभव करते हैं इसलिए हम है। हैकेल (Haeckel) कहता है कि यह आत्मभाव उस समय स्पष्ट होता है जब बालक पहले पहले 'मैं' (घ्) शब्द को बोलता है। जीव के चैतन्यभाव का ऊहापोहात्मक विवेचन करके श्री मैक्डूगल अन्त में निर्णय देते हैं कि चूँकि भाव बुद्धि की उपज नहीं हो सकती, वह अपौद्गलिक द्रव्य (Immaterial Substance) के परिणाम है क्योंकि उनका केन्द्रीय समीकरण वैयक्तिक चेतना में होता है। अत: इस चेतना को हम व्यक्ति की आत्मा या जीव के नाम से पुकार सकते हैं। ("And this being thus necessarily postulated

as the ground of the unity of individual consciousness, we may cell the soul of the individual—*Physiological psychology, pp. 76-78) हमारे नित के अनुभव जीवतत्त्व को सिद्ध करते हैं। भारत का किसान उसे 'हंस' कह कर पहिचानता है।*

"आचार्य उमास्वामी ने औपशमिक आदि एवं पारिणामिक भावों का उल्लेख जो किया है वह जीव की शुद्ध और अशुद्ध अवस्थाओं को लक्ष्य करके किया है। अनादिकाल से जीव इच्छा—वांछा में उलझा हुआ कर्ममल से मैला हो रहा है। इसलिए उसका चैतन्य स्वभाव विभाव में पलटा हुआ है। घोर जड़ता की पहली अवस्था में वह स्थूलदृष्टा होता है और शरीर को ही आपा मानता है। गुरु के उपदेश अथवा स्वसंवेदन ज्ञान से अब वह अपनी भूल को पहिचान कर सच्ची श्रद्धा को पाता है और मानता है कि मैं शरीर से भिन्न चेतनद्रव्य हूँ, तब वह प्रत्येक प्राणी में अपनी जैसी चेतन आत्मा के दर्शन करता है और समता को जगता है। वह पूर्ण निरपेक्ष और अहिंसक बनने का प्रयास करता है। वह विभाव को स्वभाव में पलट कर परतात्मदशा की ओर अग्रसर होता है और अन्त में परमात्मा हो जाता है।

.....

आचार्य हेमचन्द्र जी (1145-1229)

महान गुरु, समाज-सुधारक, धर्माचार्य, गणितज्ञ एवं अद्भुत प्रतिभाशाली मनीषी थे। भारतीय चिंतन, साहित्य और साधना के क्षेत्र में उनका नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साहित्य, दर्शन, योग, व्याकरण, काव्यशास्त्र, वाङ्मय के सभी अंङ्गो पर नवीन साहित्य की सृष्टि तथा नये पंथ को आलोकित किया। संस्कृत एवं प्राकृत पर उनका समान अधिकार था।

संस्कृत के मध्यकालीन कोशकारों में हेमचन्द्र का नाम विशेष महत्व रखता है। वे महापण्डित थे और 'कलिकालसर्वज्ञ' कहे जाते थे। वे कवि थे, काव्यशास्त्र के आचार्य थे, योगशास्त्रमर्मज्ञ थे, जैनधर्म और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे टीकाकार थे और महान कोशकार भी थे। वे जहाँ एक ओर नानाशास्त्रपारंगत आचार्य थे वहीं दूसरी ओर नाना भाषाओं के मर्मज्ञ, उनके व्याकरणकार एवं अनेकभाषाकोशकार भी थे। समस्त गुर्जरभूमि को अहिंसामय बना दिया। आचार्य हेमचन्द्र को पाकर गुजरात अज्ञान, धार्मिक रुढियों एवं अंधविश्वासों से मुक्त हो कीर्ति का कैलास एवं धर्म का महान केन्द्र बन गया। अनुकूल परिस्थिति में कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचंद्र सर्वजनहिताय एवं सर्वापदेशाय पृथ्वी पर अवतरित हुए। १२वीं शताब्दी में पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, वल्लभी, उज्जयिनी, काशी

इत्यादि समृद्धिशाली नगरों की उदात्त स्वर्णिम परम्परा में गुजरात के अणहिलपुर ने भी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया।संस्कृत कवियों का जीवनचरित्र लिखना कठिन समस्या है। सौभाग्य की बात है कि आचार्य हेमचंद्र के विषयमें यत्र-तत्र पर्याप्त तथ्य उपलब्ध है। प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह एवं कुमारपाल राजा के धर्मोपदेशक होने के कारण ऐतिहासिक लेखकों ने आचार्य हेमचन्द्र के जीवनचरित पर अपना अभिमत प्रकट किया है। आचार्य हेमचंद्र जी का जन्म ई989 गुजरात में अहमदाबाद से १०० किलोमीटर दूर दक्षिण-पश्चिम स्थित धंधुका नगर में विक्रम सवंत ११४५ के कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि में हुआ था। माता पिता शिवपार्वती उपासक मोढ वंशीय वैश्य थे। पिता का नाम चाचिंग अथवा चाच और माता का नाम पाहिणी देवी था। बालक का नाम चांगदेव रखा। माता पाहिणी और मामा नेमिनाथ दोनों ही जैन थे। आचार्य हेमचंद्र बहुत बड़े आचार्य थे अतः उनकी माता को उच्चासन मिलता था। सम्भव है, माता ने बाद में जैन धर्म की दीक्षा ले ली हो। बालक चांगदेव जब गर्भ में था तब माता ने आश्चर्यजनक स्वप्न देखे थे। इस पर आचार्य देवचंद्र गुरु ने स्वप्न का विश्लेषण करते कहा सुलक्षण सम्पन्न पुत्र होगा जो दीक्षा लेगा। जैन सिद्धान्त का सर्वत्र प्रचार प्रसार करेगा। बाल्यकाल से चांगदेव दीक्षा के लिये दृढ था। खम्भात में जैन संघ की अनुमति से उदयन मंत्री के

सहयोग से नव वर्ष की आयु में दीक्षा संस्कार विक्रम सवंत ११५४ में माघ शुक्ल चतुर्दशी शनिवार को हुआ। और उनका नाम सोमचंद्र रखा गया। अल्पआयु में शास्त्रों में तथा व्यावहारिक ज्ञान में निपुण हो गये। २१ वर्ष की अवस्था में समस्त शास्त्रोकां मंथन कर ज्ञान वृद्धि की। नागपुर (महाराष्ट्र) के पास धनज ग्राम के एक वणिक ने विक्रम सवंत ११६६ में सूरिपद प्रदान महोत्सव सम्पन्न किया। तब एक आश्चर्यजनक घटना घटी। चांगदेव जो अब सोमचन्द्र बन चुके थे एक मिट्टी के ढेर पर बैठे थे। आचार्य देवचन्द्रसूरी जी ने अपने ज्ञान में देखा और उदगार व्यक्त किये, "सोम जहाँ बैठेगा वहाँ हेम ही होगा" और वह मिट्टीका ढेर सोने में बदल चुका था। उस के बाद सोमचन्द्र, हेमचन्द्र नाम से जाने लगे। शरीर सुवर्ण समान तेजस्वी एवं चंद्रमा समान सुन्दर था। आचार्य ने साहित्य और समाज सेवा करना आरम्भ किया। प्रभावकचरित अनुसार माता पाहिणी देवी ने जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की। अभयदेवसूरि के शिष्य प्रकांड गुरुश्री देवचंद्रसूरि हेमचंद्र के दीक्षागुरु शिक्षागुरु या विद्यागुरु थे। वृद्वावस्था में हेमचंद्रसूरी को लूता रोग लग गया। अष्टांगयोगाभ्यास द्वारा उन्होंने रोग नष्ट किया। ८४ वर्ष की अवस्था में अनशनपूर्वक अन्त्याराधन क्रिया आरम्भ की। विक्रम सवंत १२२९ मे महापंडितों की प्रथम पंक्ति के पंडित ने दैहिक लीला समाप्त की। समाधिस्थल शत्रुञ्जय महातीर्थ

पहाड़ स्थित है। प्रभावकचरित के अनुसार राजा कुमारपाल को आचार्य का वियोग असह्य रहा और छः मास पश्चात स्वर्ग सिधार गया।

हेमचन्द्र अद्‌वितीय विद्‌वान थे। साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास में किसी दूसरे ग्रंथकार की इतनी अधिक और विविध विषयों की रचनाएं उपलब्ध नहीं है। व्याकरण शास्त्र के ईतिहास में हेमचंद्र का नाम सुवर्णाक्षरों से लिखा जाता है। संस्कृत शब्दानुशासन के अन्तिम रचयिता हैं। इनके साथ उत्तरभारत में संस्कृत के उत्कृष्ट मौलिक ग्रन्थों का रचनाकाल समाप्त हो जाता है। सिद्धराज ने सरस्वती का हेम प्रदीप जलाकर (सुवर्ण दीपक अथवा हेमचंद्र) अपना 'सिद्ध'नाम सार्थक कर दिया। हेमचंद्रका कहना था **स्वतंत्र आत्मा के आश्रित ज्ञान ही प्रत्यक्ष है।**

> *क्लृप्तं व्याकरणं नवं विरचितं छन्दो नवं द्‌वयाश्रयालङ्‌कारौ प्रथितौ नवौ प्रकटितं श्रीयोगशास्त्र नवम् ।तर्कः संजनितो नवो, जिनवरादीनां चरित्रं नवं बद्धं येन न केन केन विधिना मोहः कृतः दूरतः ॥*

इससे स्पष्ट है कि हेम ने व्याकरण, छन्द, द्‌वयाश्रय काव्य, अलङ्‌कार, योगशास्त्र, स्तवन काव्य, चरित कार्य प्रभृति विषय के ग्रन्थों की रचना की है। व्याकरण के क्षेत्र में सिद्धहेमशब्दानुशासन, सिद्धहेमलिङ्‌गानुशासन एवं धातुपारायण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। आचार्य ने समस्त व्याकरण वाङ्‌मय का

अनुशीलन कर 'शब्दानुशासन' एवं अन्य व्याकरण ग्रंथो की रचना की। पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथो का सम्यक अध्ययन कर सर्वाङ्ग परिपूर्ण उपयोगी एवं सरल व्याकरण की रचना कर संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं को पूर्णतया अनुशासित किया है। हेमचन्द्र ने 'सिद्धहेमशब्दानुशासनम्' नामक नूतन पञ्चाङ्ग व्याकरण तैयार किया जो (१) मूलपाठ,(२) धातुपाठ, (३) गणपाठ, (४) उणादिप्रत्यय एवं (५) लिङ्गानुशासन - इन पाँचों अंगों से परिपूर्ण है। सिद्धहेमशब्दानुशासनम् राजासिद्धराज जयसिंहकी प्रेरणा से लिखा गया है। इस ग्रन्थ में आठ अध्याय और ३५६६ सूत्र हैं। आठवाँ अध्याय प्राकृत व्याकरण है, इसमें १११९ सूत्र हैं। आचार्य हेम ने इस व्याकरण ग्रन्थ पर छः हजार श्लोक प्रमाण लघुवृत्ति और अठारह हजार श्लोक प्रमाण बृहद्वृत्ति लिखी है। बृहद्वृत्ति सात अध्याय पर ही प्राप्त होती हैआठवें अध्याय पर नहीं है।

इस व्याकरण ग्रन्थ का श्वेतछत्र सुषोभित दो चामर के साथ चल समारोह हाथी पर निकाला गया। ३०० लेखकों ने ३०० प्रतियाँ 'शब्दानुशासन' की लिखकर भिन्न-भिन्न धर्माध्यक्षों को भेंट देने के अतिरिक्त देश-विदेश, ईरान, सिंहल, नेपाल भेजी गयी। २० प्रतियाँ काश्मीर के सरस्वती भाण्डार में पहुंची। ज्ञानपञ्चमी (कार्तिक सुदि पंचमी) के दिन परीक्षा ली जाती थी।आचार्य हेमचन्द्र संस्कृत के अन्तिम

महावैयाकरण थे। अपभ्रंश साहित्य की प्राचीन समृद्वि के सम्बध में विद्वान उन पदों के स्तोत्र की खोज में लग गये। १८००० श्लोक प्रमाण बृहदवृत्ति पर भाष्य कतिचिद दुर्गापदख्या व्याख्या लिखी गयी। इस भाष्य की हस्तलिखित प्रति बर्लिन में है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अनेक विषयों पर विविध प्रकार के काव्य रचे हैं। अश्वघोष के समान हेमचंद्र सोद्देश्य काव्य रचना में विश्वास रखते थे। इनका काव्य 'काव्यमानन्दाय' न होकर 'काव्यं धर्मप्रचारय' है। अश्वघोष और कालिदास के सहज एवं सरल शैली जैसी शैली नहीं थी किन्तु उनकी कविताओं में हृदय और मस्तिष्क का अपूर्व मिश्रण था।आचार्य हेमचन्द्र के काव्य में संस्कृत बृहत्त्रयीके पाण्डित्यपूर्ण चमत्कृत शैली है। भट्टि के अनुसार व्याकरण का विवेचन, अश्वघोष के अनुसार धर्मप्रचार एवं कल्हण के अनुसार इतिहास है। आचार्य हेमचंद्र का पण्डित कवियों में मूर्धन्य स्थान है। 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' एक पुराण काव्य है। संस्कृतस्तोत्र साहित्य में 'वीतरागस्तोत्र' का महत्वपूर्ण स्थान है। व्याकरण, इतिहास और काव्य का तीनों का वाहक द्ववाश्रय काव्य अपूर्व है। इस धर्माचार्य को साहित्य-सम्राट कहने में अत्युक्ति नहीं है।'द्वयाश्रय' नाम से ही स्पष्ट है कि उसमें दो तथ्यों को सन्निबद्ध किया गया है। इसमें चालुक्य वंश के चरित के साथ व्याकरण के सूत्रों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें

सन्देह नहीं कि हेमचन्द्र ने एक सर्वगुण-सम्पन्न महाकाव्य में सूत्रों का सन्दर्भ लेकर अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। इस महाकाव्य में २० सर्ग और २८८८ श्लोक हैं। सृष्टिवर्णन, ऋतुवर्णन, रसवर्णन आदि महाकाव्य के सभी गुण वर्तमान हैं। काव्यानुशासन ने उन्हें उच्चकोटि के काव्यशास्त्रकारों की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया। पूर्वाचार्यो से बहुत कुछ लेकर परवर्ती विचारकों को चिन्तन के लिए विपुल सामग्री प्रदान की। काव्यानुशासन का - सूत्र, व्याख्या और सोदाहरण वृत्ति - ऐसे तीन प्रमुख भाग हैं। सूत्रो की व्याख्या करने वाली व्याख्या 'अलंकारचूडामणि' नाम प्रचलित है। और स्पष्ट करने के लिए 'विवेक' नामक वृति लिखी गयी।'काव्यानुशासन' ८ अध्यायों में विभाजित २०८ सूत्रो में काव्यशास्त्र के सारे विषयों का प्रतिपादन किया गया है। 'अलंकारचूडामणि' में ८०७ उदाहरण प्रस्तुत है तथा 'विवेक'में ८२५ उदाहरण प्रस्तुत है। ५० कवियों के तथा ८१ ग्रंथो के नामोका उल्लेख है। मौलिकता के विषय में हेमचंद्र का अपना स्वतंत्र मत है। हेमचंद्र मत से कोई भी ग्रंथकार नयी चीज नहीं लिखता। यद्यपि मम्मट का 'काव्यप्रकाश' के साथ हेमचंद्र का 'काव्यानुशासन' का बहुत साम्य है। पर्याप्त स्थानों पर हेमचंद्राचार्य ने मम्मटका विरोध किया है। हेमचंद्राचार्य के अनुसार आनन्द, यश एव कान्तातुल्य उपदेश ही काव्य के प्रयोजन हो सकते हैं तथा अर्थलाभ, व्यवहार ज्ञान एवं अनिष्ट

निवृत्ति हेमचंद्र के मतानुसार काव्य के प्रयोजन नहीं हैं। काव्यानुशासन से काव्यशास्त्र के पाठकों कों समझने में सुलभता, सुगमता होती है। मम्मट का 'काव्यप्रकाश' विस्तृत है, सुव्यवस्थित है, सुगम नहीं है। अगणित टीकाएं होने पर भी मम्मट का 'काव्यप्रकाश दुर्गम रह जाता है। 'काव्यानुशासन' में इस दुर्गमता को 'अलंकारचूडामणि' एवं 'विवेक' के द्वारा सुगमता में परिणत किया गया है 'काव्यानुशासन में स्पष्ट लिखते हैं कि वे अपना मत निर्धारण अभिनवगुप्त एवं भरत के आधार पर कर रहे हैं सचमुच अन्य ग्रंथो-ग्रंथकारों के उद्वरण प्रस्तुत करते हेमचन्द्र अपना स्वयं का स्वतंत्र मत, शैली, दष्टिकोण से मौलिक है। ग्रंथ एवं ग्रंथकारों के नाम से संस्कृत-साहित्य, इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। सभी स्तर के पाठक के लिए सर्वोत्कृष्ठ पाठ्यपुस्तक है। विशेष ज्ञानवृद्वि का अवसर दिया है। अतः आचार्य हेमचंद्र के 'काव्यानुशासन' का अध्ययन करने के पश्चात फिर दूसरा ग्रंथ पढ़ने की जरुरत नहीं रहती। सम्पूर्ण काव्य-शास्त्र पर सुव्यवस्थित तथा सुरचित प्रबन्ध है ।आचार्य हेम ने संस्कृत में अनेक कोशों की रचना के साथ साथ प्राकृत—अपभ्रंश—कोश भी (देशीनाममाला) उन्होंने सम्पादित किया। उन्होने चार कोशों की रचना की- अभिधानचिन्तामणीमाला, अनेकार्थसङ्ग्रह, निघण्टुशेष और देशीनाममाला। अभिधानचिन्तामणि (या 'अभिधानचिन्तामणिनाममाला') इनका प्रसिद्ध पर्यायवाची कोश

है। छह काण्डों के इस कोश का प्रथम काण्ड केवल जैन देवों और जैनमतीय या धार्मिक शब्दों से सम्बद्ध है। देव, मर्त्य, भूमि या तिर्यक, नारक और सामान्य—शेष पाँच काण्ड हैं। 'अभिधानचिन्तामणि' पर उनकी स्वविरचित 'यशोविजय' टीका है—जिसके अतिरिक्त, व्युत्पत्तिरत्नाकर' (देवसागकरणि) और 'सारोद्धार' (वल्लभगणि) प्रसिद्ध टीकाएँ है। इसमें नाना छन्दों में १५४२ श्लोक है।निघण्टुशेष अभिधानचिन्तामणि का पूरक कोश है जिसमें वनस्पतियों से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह है। यह कोश छः काण्डों में बद्ध है। दूसरा कोश 'अनेकार्थसंग्रह' (श्लोक संख्या १८२९) है जो छह काण्डों में है। एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से काण्डयोजन है। अन्त में परिशिष्टत काण्ड अव्ययों से सम्बद्ध है। प्रत्येक काण्ड में दो प्रकार की शब्दक्रमयोजनाएँ हैं—(१) प्रथमाक्षरानुसारी और (२) अन्तिमाक्षरानुसारी। 'देशीनाममाला' प्राकृत का (और अंशतः अपभ्रंश का भी) शब्दकोश है जिसका आधार 'पाइयलच्छी' नाममाला है।सामान्यतः जैन और हिन्दु धर्म में कोई विशेष अन्तर नहीं है। जैन धर्म वैदिक कर्म-काण्ड के प्रतिबन्ध एवं उस के हिंसा सम्बन्धी विधानों कों स्वीकार नहीं करता। आचार्य हेमचन्द्र के दर्शन ग्रन्थ 'प्रमाणमीमांसा' का विशिष्ट स्थान है। हेमचन्द्र के अन्तिम अपूर्ण ग्रन्थ प्रमाणमीमांसा का प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी द्वारा सम्पादन हुआ। सूत्र शैली का ग्रन्थकणाद या अक्षपाद के

समान है। दुर्भाग्य से इस समय तक १०० सूत्र ही उपलब्ध हैं। संभवतः वृद्वावस्था में इस ग्रन्थ को पूर्ण नहीं कर सके अथवा शेष भाग काल कवलित होने का कलंक शिष्यों को लगा।

हेमचन्द्र के अनुसार प्रमाण दो ही है, प्रत्यक्ष ओर परोक्ष। दोनों एक-दूसरे से बिलकुल अलग हैं। स्वतन्त्र आत्मा के आश्रित ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। आचार्य के ये विचार तत्वचिन्तन में मौलिक है। हेमचन्द्र ने तर्कशास्त्र में कथा का एक वादात्मक रूप ही स्थिर किया जिसमें छल आदि किसी भी कपट-व्यवहार का प्रयोग वर्ज्य है। हेमचन्द्र के अनुसार इंद्रियजन्म, मतिज्ञान और परमार्थिक केवलज्ञान में सत्य की मात्रा में अन्तर है, योग्यता अथवा गुण में नहीं। प्रमाणमीमांसा से सम्पूर्ण भारतीय दर्शन शास्त्र के गौरव में वृद्वि हुई।इसकी शैली पतंजलि के योगसूत्र के अनुसार ही है किन्तु विषय और वर्णन क्रम में मौलिकता एवं भिन्नता है। योगशास्त्र नीति विषयक उपदेशात्मक काव्य की कोटि में आता है। योगशास्त्र जैन संप्रदाय का धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रंथ है। वह अध्यात्मोपनिषद् है। इसके अंतर्गत मदिरा दोष, मांस दोष, नवनीत भक्षण दोष, मधु दोष, उदुम्बर दोष, रात्रि भोजन दोष का वर्णन है। अंतिम १२ वें प्रकाश के प्रारम्भ में श्रुत समुद्र और गुरु के मुखसे जो कुछ मैं ने जाना है उसका वर्णन कर चुका हूँ अब निर्मल अनुभव सिद्व तत्व को प्रकाशित करता

हूँ ऐसा निदेश कर के विक्षिप्त, यातायात, इन चित-भेंदो के स्वरुपका कथन करते बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरुप कहा गया है।

- सदाचार ही ईश्वर प्रणिधान नियम है।
- निर्मल चित ही मनुष्य का धर्म है।
- संवेदन ही मोक्ष है जिसके सामने सुख कुछ नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है।

संवेदन के लिये पातञ्जल योगसूत्र तथा हेमचंद्र योगशास्त्र में पर्याप्त साम्य है। योग से शरीर और मन शुद्ध होता है। योग का अर्थ है, 'चित्रवृति का निरोध। मन को सबल बनाने के लिये शरीर सबल बनाना अत्यावश्यक है। योगसूत्र और योगशास्त्र में अत्यन्त सात्विक आहार की उपादेयता बतलाकर अभक्ष्य भक्षण का निषेध किया गया है। आचार्य हेमचन्द्र सब से प्रथम 'नमो अरिहन्ताणं' से राग-द्वेषादि आन्तरिक शत्रुओं का नाश करने वाले को नमस्कार कहा है। योगसूत्र तथा योगशास्त्र पास-पास है। संसार के सभी वाद, संप्रदाय, मत, दृष्टिराग के परिणाम है। दृष्टिराग के कारण अशान्ति और दुःख है। अतः विश्वशान्ति के लिये, दृष्टिराग उच्छेदन के लिये हेमचन्द्र का योगशास्त्र आज भी अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है।

साहित्य में आचार्य हेमचन्द्र के योगशास्त्र का स्थान

हेमचंद्र ने अपने योगशास्त्र से सभी को गृहस्थ जीवन में आत्मसाधना की प्रेरणा दी। पुरुषार्थ से दूर रहने वाले को पुरुषार्थ की प्रेरणा दी। इनका मूल मंत्र स्वावलंबन है। वीर और दृढ चित पुरुषों के लिये उनका धर्म है। हेमचंद्राचार्य के ग्रंथो ने संस्कृत एवं धार्मिक साहित्य में भक्ति के साथ श्रवण धर्म तथा साधना युक्त आचार धर्म का प्रचार किया। समाज में से निद्रालस्य को भगाकर जागृति उत्पन्न की। सात्विक जीवन से दीर्घायु पाने के उपाय बताये। सदाचार से आदर्श नागरिक निर्माण कर समाज को सुव्यवस्थित करने में आचर्य ने अपूर्व योगदान किया।आचार्य हेमचंद्र ने तर्कशुद्ध, तर्कसिद्ध एवं भक्तियुक्त सरस वाणी के द्वारा ज्ञान चेतना का विकास किया और परमोच्च चोटी पर पहुंचा दिया। पुरानी जड़ता को जड़मूल से उखाड़ फेंक दिया। आत्मविश्वास का संचार किया। आचार्य के ग्रंथो के कारण जैन धर्म गुजरात में दृढमूल हुआ। भारत में सर्वत्र, विशेषतः मध्य प्रदेश में, जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार में उन के ग्रंथों ने अभूतपूर्वयोगदान किया। इस दृष्टि से जैन धर्म के साहित्य में आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों का स्थान अमूल्य है।संस्कृत में उमास्वाति का 'तत्वार्थाधिगमसूत्र', सिद्धसेन दिवाकर का 'न्यायावतार', नेमिचंद्र का' द्रव्यसंग्रह', मल्लिसेन की 'स्याद्वादमंजरी',

प्रभाचंद्र का 'प्रमेय कमलमातंड', आदि प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रंथ है। उमास्वाति से जैन देह में दर्शानात्मा ने प्रवेश किया। कुछ ज्ञान की चेतना प्रस्फुटित हुई जो आगे कुंदकुंद सिद्धसेन, अकलंक, विद्यानंद, हरिभद्र, यशोविजय, आदि रूप में विकशीत होती गयी। काव्यानुशासन, न्दानुशासन, सिद्धहैमशब्दानुशासन, णादिसूत्रवृत्ति,अनेकार्थ कोश,देशीनाममाला,अभिधानचिन्तामणि, द्वाश्रय महाकाव्य, काव्यानुप्रकाश, त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित, परिशिष्ट-पर्वन, अलङ्कारचूडामणि, प्रमाणमीमांसा, वीतरागस्तोत्र, संस्कृत सहित्य का आरम्भ सुदूर वैदिक काल से होता है। जैन साहित्य अधिकांशत: प्राकृत में था। 'चतुर्धपूर्व और 'एकादश अंग' ग्रंथ संस्कृत में थे। ये पूर्व ग्रंथ लुप्त हो गये। जैन धर्म श्रमण प्रधान है। आचरण प्रमुख है। *आचार्य हेमचन्द्र* के नाम से प्रसिद्ध हेमचन्द्रसूरी (१०८९-११७२) जैन विद्वान थे। भारतीय गणितज्ञ तथा इन्होने हेमचन्द्र श्रेणी का लिखित उल्लेख किया था जिसे बाद में फिबोनाची श्रेणी के नाम से जाना गया।

सदा हृदि वहेम श्री हेमसूरेः सरस्वतीम् ।
सुवत्या शब्दरत्नानि ताम्रपर्णा जितायया ॥

ज्ञान के अगाध सागर कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र को पार पाना अत्यन्त दुष्कर है। जिज्ञासु को कार्य करने में थोड़ी सी प्रेरणा मिलने पर सब अपने आपको कृतार्थ समझेंगें। (सोमेश्वर भट्ट की 'कीर्ति कौमिदी' में) हेमचंद्र अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि थे। राजाकुमारपाल के सामने किसी मत्सरी ने कहा 'जैन प्रत्यक्ष देव

सूर्य को नहीं मानते, इस पर हेमचन्द्र ने उत्तर दिया। जैन साधु ही सूर्यनारायण को अपने हृदय में रखते हैं। सुर्यास्त होते ही जैन साधु अन्नजल त्याग देते हैं। और ऐसा कौन करता है ?

उपनिषद क्या हैं।

उपनिषद वेदों की ज्ञान जो ऋषियों की ज्ञानचर्चा का सार है। वैदिक युग से पहले सांसारिक आनन्द एवं उपभोग का युग था। मानव मन की निश्चिन्तता, पवित्रता, भावुकता का युग था जिसे जैन धर्म युगलियों का युग मानती है वह सब कुछ कल्पवृक्ष से प्राप्त करते थे। नरक व उसमें मिलने वाली यातनाओं की कल्पना तक नहीं की गई थी । यह जीवनशैली दीर्घ काल तक चली। एक दिन तो मनुष्य जब इन सुख सुविधाओं से वाचिंत हो ग्या तो ऋषभदेव ने मनुष्य को असि,मसि और कसि का ज्ञान दिया जबकि वैदिक कहते है कि यह सब ब्रह्मा ने किया । समस्त वेदों मे पुराणों मे, उपनिषदों में भगवान ऋषभदेव का वर्णन आता है जिससे यह सिद्ध होता है कि भगवान ऋषभ देव ही प्रथम सूत्रधार हैं, इनका ज्ञान श्रुतज्ञान था लिपीबद्ध नहीं हुआ जब कि ऋषभदेव के साथ हुए दीक्षित कठिन संयम न पाल सके और उन्हों ने अलग-अलग तरह का प्रचार किया और ऋषभदेव को अलग अलग तरह प्रस्तुत किया । वैदिक ईश्वरवादी ब्रह्मा को मानते हैं और इनके वेद राक्षस चोरी

कर ले गये, ज्ञान कभी चोरी नहीं हो सकता, वास्तव में ब्रह्मा, विष्णु महेष, शिव शंकर हरि सब ऋषभदेव के ही रुप हैं । मान्यता का ढ़ंग अलग अलग है ।

.....स्वतन्त्र जैन

जैन धर्म का इतिहास अन्य इतिहासकारों की दृष्टि में

उदयगिरि की रानी गुम्फा

जैन धर्म भारत की श्रमण परम्परा से निकला प्राचीन धर्म

और दर्शन है। जैन अर्थात् कर्मों का नाश करनेवाले 'जिन भगवान' के अनुयायी। सिन्धु घाटी से मिले जैन अवशेष जैन धर्म को सबसे प्राचीन धर्म का दर्जा देते है।

संभेद्रिखर, राजगिर, पावापुरी, गिरनार, शत्रुंजय, श्रवणबेलगोला आदि जैनों के प्रसिद्ध तीर्थ हैं। पर्यूषण या दशलाक्षणी, दिवाली और रक्षाबंधन इनके मुख्य त्योहार हैं। अहमदाबाद, महाराष्ट्र,

उत्तर प्रदेश और बंगाल आदि के अनेक जैन आजकल भारत के अग्रगण्य उद्योगपति और व्यापारियों में गिने जाते हैं।

जैन धर्म का उद्भव की स्थिति स्पष्ट है। जैन ग्रंथो के अनुसार धर्म वस्तु का स्वाभाव समझाता है, इसलिए जब]से सृष्टि है तब से धर्म है, और जब तक सृष्टि है, तब तक धर्म रहेगा, अर्थात् जैन धर्म सदा से अस्तित्व में था और सदा रहेगा। इतिहासकारो द्वारा जैन धर्म का मूल भी सिन्धुघाटी की सभ्यता से जोड़ा जाता है जो हिन्द आर्य प्रवास से पूर्व की देशी आध्यात्मिकता को दर्शाता है। सिन्धु घाटी से मिले जैन शिलालेख भी जैन धर्म के सबसे प्राचीन धर्म होने की पुष्टि करते है। अन्य शोधार्थियों के अनुसार श्रमण परम्परा ऐतिहासिक वैदिक धर्म के हिन्द-आर्य प्रथाओं के साथ समकालीन और पृथक हुआ।

जैन ग्रंथो के अनुसार वर्तमान में प्रचलित जैन धर्म भगवान आदिनाथ के समय से प्रचलन में आया। यहीं से जो तीर्थंकर परम्परा प्रारम्भ हुयी वह भगवान महावीर या वर्धमान तक चलती रही जिन्होंने ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था। भगवान महावीर के समय से पीछे कुछ लोग विशेषकर यूरोपियन विद्वान् जैन धर्म का प्रचलित होना मानते हैं। जिस प्रकार बौद्धों में २४ बुद्ध है, वैदिक में विष्णु के 24 अवतार हैं उसी प्रकार जैनों में भी २४ तीर्थकार

है। परिभाषा जैन शब्द का अर्थ : जैन शब्द जिन शब्द से बना है। जिन बना है 'जि' धातु से जिसका अर्थ है जीतना। जिन अर्थात जीतने वाला। जिसने स्वयं को जीत लिया उसे जितेंद्रिय कहते हैं।

ऐतिहासिक रूपरेखा

जैन मान्यता के अनुसार जैन धर्म अनादि काल से चला आया है अनंत काल तक चलता रहेगा। इस धर्म का प्रचार करने के लिये समय-समय पर अनेक तीर्थंकरों का आविर्भाव होता रहता है। जैन धर्म के २४ तीर्थंकरों में ऋषभ प्रथम और महावीर अंतिम तीर्थंकर थे।

महावीर के ११ गणधर (मुख्य शिष्य) थे -- इंद्रभूति गौतम , अग्निभूतीगौतम ,वायुभूतिगौतम, व्यक्तस्वामी, सुधर्मास्वामी , मंडितपुत्र, मौर्यपुत्र, अकंपितगौतम, अचलभ्राता, मेतार्यस्वामी और प्रभासस्वामी। महावीर स्वयं क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे लेकिन उनके सभी गणधर ब्राह्मण थे। इनमें गौतम इंद्रभूति और सुधर्मा को छोड़कर नौ गणधरों ने महावीर भगवान के जीवन काल में ही देह त्याग किया। जिस रात्रि को महावीर ने निर्वाण पाया उसी रात्रि को गौतम इंद्रभूति को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

महावीर-निर्वाण के पश्चात् सुधर्मा २० वर्ष तक जैन संघ के अधिपति रहे। बाद में संघ का भार जंबूस्वामी के सुपुर्द कर

दिया गया और इस प्रकार जैन परंपरा आगे बढ़ती रही। जंबूस्वामी के पश्चात् केवलज्ञान और निर्वाण्गमन के द्वार बंद हो गए।

पार्श्वनाथ की मान्यता का अनुसरण कर लिच्छवि कुलोत्पन्न महावीर ने चतुर्विध संघ को दृढ़ बनाने के लिये गणतंत्रवादी आदर्श पर संघ के नियमों को संघटित किया। निर्ग्रंथ धर्म का प्रचार करने के लिए ज्ञातपुत्र महावीर ने बिहार में राजगृह, चंपा (भागलपुर), मछिया (मुंगेर), वैशाली (बसाढ़) और मिथिला

(जनकपुर) आदि तथा उत्तर-प्रदेश में बनारस, कौशांबी (कोसम) अयोध्या, श्रावस्ति (सहेट-महेट) और स्थूणा (स्थानेश्वर) आदि स्थानों में विहार किया। उस समय यही आर्य क्षेत्र कहलाता था, शेष क्षेत्र अनार्य था।

मगध के राजा बिंबसार (श्रेणिक) और अजातशत्रु (कूणिक) को जैनधर्म का अनुयायी कहा गया है। राजसिंह श्रेणिक द्वारा महावीर से प्रश्न पूछे जाने का उल्लेख जैन शास्त्रों में आता है। चंपा नगरी में महावीर भगवान के समवसृत होने पर अजातशत्रु का अपने दलबल सहित उनके दर्शनार्थ गमन करने का वर्णन प्राचीन आगमों में मिलता है। नंद राजाओं के समय भद्रबाहु और स्थूलभद्र बड़े प्रतिभाशाली जैन आचार्य हुए जिन्होंने जैन धर्म को समुन्नत बनाया। आचार्य महागिरि स्थूलभद्र के प्रधान शिष्यों में से थे। तत्पश्चात्

पाटलिपुत्र में चंद्रगुप्त मौर्य (३२५-३०२ ई० पूर्व) का राज्य हुआ। इस समय मगध में भयंकर दुष्काल पड़ा और जैन साधु मगध छोड़कर चले गए। दुष्काल समाप्त होने पर जब लौटकर आए तब पाटलिपुत्र में जैन आगमों की प्रथम वाचना हुई जो 'पाटलिपुत्र-वाचना' के नाम से कही जाती है। दिगंबर जैन परंपरा के अनुसार चंद्रगुप्त ने जैन दीक्षा ग्रहण की और दक्षिण भारत में श्रवणबेलगोला में देह-त्याग किया। चंद्रगुप्त के बाद अशोक (२७२-२३२ ई० पू०) के पौत्र राजा संप्रति (२२०-२११ ई० पू०) का नाम जैन ग्रंथों में बहुत आदर के साथ लिया जाता है। आचार्य महागिरि के शिष्य सुहस्ति ने संप्रति को जैन धर्म में दीक्षित किया। संप्रति ने महाराष्ट्र, आंध्र. द्रविड़, कुर्ग आदि प्रदेशों में अपने सुभटों को भेजकर जैन श्रमणसंघ की विशेष प्रभावना की।

कलिंग का सम्राट् खारवेल जैन धर्म का परम अनुयायी था। मगध का राजा नंद, जो जिन-प्रतिमा उठाकर ले गया था, उसे वह वापस लाया। कटक के पास उदयगिरि से प्राप्त, शिलालेखों से पता चलता है कि खारवेल ने ऋषभ की प्रतिमा निर्माण कराई और जैन साधुओं के रहने के लिये गुफाएँ खुदवाईं। तत्पश्चात् ईसवी सन् के पूर्व प्रथम शताब्दी में उज्जैनी के राजा विक्रमादित्य के पिता गर्दभिल्ल से उत्तेजित किए जाने पर कालकाचार्य का ईरान जाकर शक राजाओं को हिंदुस्तान में लाने का उल्लेख जैन ग्रंथों में मिलता है। कालकाचार्य को

प्रतिष्ठान (पैठन, महाराष्ट्र) के राजा सातवाहन का समकालीन बताया गया है। फिर आचार्य पादलिप्त, वज्रस्वामी और आर्यरक्षित ने संघ का अधिपतित्व किया। इस प्रकार जैन धर्म की उन्नति होती गई और अब वह दूर दूर तक फैल गया।

मथुरा के कंकाली टीला नामक पुरातात्विक स्थल पर चार तीर्थंकरों की मूर्ति मथुरा में ईसवी सन् के आरंभ के जो शिलालेख उपलब्ध हुए हैं। उनसे पता लगता है कि किसी समय मथुरा जैन धर्म का बड़ा केंद्र था तथा व्यापारी और निम्नवर्ग के लोग इस धर्म के अनुयायी थे। यहाँ के शिलालेखों में जो जैन आचार्यों के गण, कुल और शाखाओं का उल्लेख है वह भद्रबाहु के कल्पसूत्र की स्थाविरावलि में ज्यों का त्यों मिलता है। ईसवी सन् ३६०-७३ के लगभग आर्य स्कंदिल की अध्यक्षता में मथुरा में जैन आगमों की दूसरी वाचना हुई, इससे भी मथुरा के महत्त्व का पता चलता है। इस काल के प्रमुख जैन आचार्यो में उमास्वाति, कुंदकुंद सिद्धसेन और समंतभद्र आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं

जिन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से जैन साहित्य को पुष्पित और पल्लवित किया।

गुप्त राजाओं का काल भारतवर्ष का सुवर्णकाल कहा जाता है। इस समय जैन धर्म उत्तरोत्तर उन्नत दशा को प्राप्त होता गया। गुजरात में गिरनार और शत्रुंजय जैनों के परम तीर्थ माने गए हैं। ईसवीं सन् की ७वीं शताब्दी में देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के अधिपतित्व में बलभी में जैन आगमों की अंतिम वाचना स्वीकार कर उन्हें लिपिबद्ध कर दिया गया। आगे चलकर चावड़ा वंश के राजा वनराज ने राजगद्दी पर आसीन होने के पूर्व (७२०-७८०) जैन मुनि शीलगुणसूरि के उपदेश से प्रभावित हो गुजरात का प्रसिद्ध अणहिल्लपुर पाटण नाम का नगर बसाया। हरिभद्र और अकलंक जैसे प्रकांड विद्वानों का इस समय जन्म हुआ जिन्होंने न्यायसिद्धांत आदि विषयों पर ग्रंथ लिखकर जैन धर्म को समुन्नत किया।

फिर चालुक्य वंशके स्थापक राजा मूलराज (९६१-९९६) ने जैन मंदिर का निर्माण कराया। अणहिल्लपुर पाटण के राजा सिद्धराज जयसिंह कलिकाल सर्वज्ञहेमचंद्र (जन्म १०८८ ई०) के समकालीन थे। सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु हो जाने पर उनका भतीजा कुमारपाल गुजरात की गद्दी पर बैठा। कुमारपाल हेमचंद को राजगुरु की तरह मानते थे। इस समय आदर्श जैन राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया

जिसके फलस्वरूप अनेक सुंदर जैन मंदिरों का निर्माण हुआ, प्राणि हिंसा, शिकार, मांस-भक्षण आदि को रोकने की घोषणा की गई और यज्ञ के अवसर पर पशुहिंसा के बदले ब्राह्मणों को अनाज होम करने का आदेश दिया गया। इसी समय वस्तुपाल और तेजपाल मंत्रियों ने गिरनार, शत्रुंजय तथा आबू पर्वतों पर कलापूर्ण भव्य मंदिरों का निर्माण किया।

दक्षिण भारत में भी जैनधर्म का प्रसार हुआ, खासकर दिगंबर जैनों का वहाँ प्रवेश हुआ। ईसा सन् की प्रारंभिक शताब्दियों से ही तमिल साहित्य पर जैन धर्म का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। चोल और चेर इस धर्म के अनुयायी बने। महाराष्ट्र, कर्नाटक, मद्रास राज्य के उत्तरी भाग, कुर्ग, आंध्र और मैसूर राज्य में अनेक जैन धर्मानुयायी लोग बसते थे, इसा पता इन स्थानों के जीर्णशीर्ण देवालयों और शिलालेखों से लगता है। कर्नाटक दिगंबर संप्रदाय का मुख्य धाम था। दिगंबर आचार्य समंतभद्र और पूज्यपाद ने इस प्रदेश में घूम घूमकर जैने धर्म का अभ्युत्थान किया था। गंग और राष्ट्रकूट राजवंशों के आश्रय से जैन धर्म उन्नत हुआ। गंगवंशी राजा राजमल्ल के मंत्री और सेनापति तथा सिद्धांतचक्रवर्ती नेमिचंद्र के गुरु चामुंडराय ने सन् ९८० में अरिष्टनेमि का भव्य देवालय और गोम्मटेश्वर की प्रकंड प्रतिमा का निर्माण कराया। चामुंडराय सुप्रद्धि कविरत्न का आश्रयदाता था। राष्ट्रकूट वंश के राजाओं में अमोघवर्ष प्रथम (८१५-८७७ ई०) जैन

आचार्य जिनसेन के शिष्य थे। अमोघवर्ष ने जिनसेन के शिष्य गुणभद्र को भी आश्रय दिया। कदंबवंशी भी अधिकतर जैने धर्म के अनुयायी रहे।

मुसलमानों के राज्य में अनेक बादशाहों ने जैन मुनियों को सम्मानित कर उच्च पद पर बैठाया। सुलतान फिरोजशाह तुगलक (१३५१-१३८८) ने रत्नशेखरसूरि को, तुगलक सुलतान मुहम्मद शाह ने जिरप्रभसूरि के और सम्राट् अकबर (१५५६-१९०५) ने हीरविजयसूरि को सम्मानित किया। इसी प्रकार

औरंगजेब (१६५९-१७०७) ने अपने दरबार के जवेरी शांतिदास जैन को शत्रुंजय पर्वत और उसकी दो लाख की आमदनी, तथा अहमदशाह (१७४८-१७४५) ने जगत्सेठ महताबराय को पारसनाथ पर्वत देकर पुरस्कृत किया।

जैन शब्द का अर्थ : जैन शब्द जिन शब्द से बना है। जिन बना है 'जि' धातु से जिसका अर्थ है जीतना। जिन अर्थात जीतने वाला। जिसने स्वयं को जीत लिया उसे जितेंद्रिय कहते हैं।

जैन अब पूरे विश्व में फैल चुके हैं कैनेडा, अमैरिका और ईंगलैंड में समस्त जैन परम्पराओं के सदस्य लगभग एक लाख से अधिक है ।

****

बुद्ध विष्णु के अवतार नही है।

बुध्द पूर्णीमा पर विशेष पिछड़ा वर्ग के अध्ययन से बुद्ध की जाति पर पुनर्विचार करना लाजमी है, क्योंकि इस जाति के आधार पर ही बुद्ध को ब्राम्हणों द्वारा विष्णु के दसवें अवतार के रूप में प्रतिस्थापित किया गया। इसी प्रतिस्थापना के खेल में बुद्ध की सारी उपलब्धियों पर पानी फेर दिया गया, क्योंकि इस स्थापना से बुद्धिजम का सीधे संविलियन हिन्दुइज्म में ही जाता है। वास्तव में यह कोशिश हिन्दुवादियों द्वारा बुद्धिवादियों के पचाने की है।इस कोशिश के पीछे आम जनता में 'पिछड़ा वर्ग' अपनी प्रभुता कायम रखना रहा है। इसके एक मनतव्य यह भी रहा है कि बुद्ध धर्म हिन्दू धर्म की एक छोटी से शाखा प्रतीत हो तथा बुद्ध धर्म के प्रति आकर्षण खत्म हो जाये । ब्राम्हणवाद इस कोशिश में बहुत हद तक कामयाब भी रहा। वास्तव में अब बुद्ध का जाति पर पुनर्विचार किये जाने की नितांत आवश्यकता है। इस बात के प्रमाण अवश्य मिले हैं कि शाक्य जाति के थे, लेकिन ये जाति शूद्रों में शुमार होती थी। बुद्ध को क्षत्रिय कहने का सबसे बड़ा कारण उनका शासक का पुत्र होना है,जबकि शासक किसी भी जाति का हो सकता था। ऐसे कई उदाहरण इतिहास में मौजूद हैं जिनमें यह तथ्य उभरकर आता है कि निचली जाति का व्यक्ति शासक बनने पर अपनी वंशवाली में सुधार कर क्षत्रिय जाति में स्थापित हो जाता है। ऐसे कृत्यों के ताजा उदाहरणों में महाराष्टं के शिवाजी तथा बंगाल के सेन वंश को लिया जा सकता है। इस आधार पर बुद्ध को शाक्य शूद्र वंश का कहने में कोई जल्दबाजी नहीं होगी, बल्कि कई जगह बुद्ध द्वारा ब्राम्हण के साथ

वार्तालाप में शाक्यों का पक्ष लेते हुए विवरण दिया गया है, लेकिन बुद्धकाल में शाक्यों की जाति प्रतिष्ठि थी, ऐसा विवरण भी मिलता है। पहला प्रश्न यह उठता है कि बुद्ध हिन्दु थे या नहीं, तो उसका यह जवाब प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह किया जा सकता है कि वे शाक्य थे और शाक्य भारत में एक हमलावर के रूप में आये, बाद में ये जाति भारतीयों के साथ मिल गई,साधारण भाषा में कहें तो हिन्दुओं से मिल गए। चूंकि वे शासक वर्ग के थे अनचाहे ही क्षत्रिय होने का दर्जा पा गये, किन्तु महात्मा बुद्ध अपने कई उपदेशों में शाक्य होने का वर्णन करते हैं तथा शाक्यों का भरपूर पक्षपात करने की चेष्टा करते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि उस समय शाक्य एवं ब्राम्हण में वर्ग संघर्ष जैसी स्थिति थी और बुद्ध धर्म का फैलना यह सिद्ध करता है कि शाक्यों ने अथवा बुद्ध ने हिन्दूवाद को जबरदस्त शिकस्त दी थी।गौरतलब तथ्य यह है कि बुद्ध ने कभी अपने-आपको क्षत्रिय नहीं कहा। बुद्ध और ब्राम्हण के वार्तालाप में एक जगह ब्राम्हण ने शाक्य को नीच शूद्र जाति बताया। इस पर अम्बष्ट माणवक का उनर ध्यान देने योग्य है-"श्रवण गौतम दुष्ट हैं। हे गौतम! शाक्य जाति चण्ड है। है गौतम! शाक्य जाति शूद्र है। हे गौतम! शाक्य जाति बकवादी है। इभ्य समान होने से शाक्य जाति ब्राम्हणों का सत्कार नहीं करते, ब्राम्हणों का मान नहीं करते, गुरूकार नहीं करते, ब्राम्हणों की पूजा नहीं करते। इस बात से इस संभावना को और बल मिलता है कि ब्राम्हणों ने शाक्यों को इसी संघर्ष के कारण शूद्र में ढकेल दिया गया। बुद्ध काल में वे बुद्ध को शूद्र कहते रहे, बाद में लगभग 1000 साल बाद स्मृति काल में

अचानक ब्राम्हणों ने बुद्ध को क्षत्रिय बना लिया, क्योंकि क्षत्रिय वर्ग ब्राम्हण का अनुगामी था। बुद्ध को क्षत्रिय बताने के दो फायदे थे1 उन्हें शूद्र से सीधे क्षत्रिय में पदोन्नत करने पर बुद्धवाद पर हिन्दुवाद लादा जा सकता था तथा तमाम आम जनता पिछड़ा वर्ग जो बुद्धिष्ठ थी, को बिना अनुष्ठान के ही हिन्दू में तब्दील किया जा सकता था। यदि उन्हें शूद्र की संज्ञा दी जाती तो वे शूद्रों के स्थाई एवं अकाट्य भगवान बन जाते। उन्हें शूद्रों से अलग नहीं किया जा सकता और पूरी जनता हिन्दू धर्म से अलग मानी जाती । शाक्य कौन थे? श्री देवीप्रसाद चट्टोपध्याय जी अपने अध्ययन लोकायत में बुद्ध को एक जनजाति समाज का बताते है और तथ्य देते हैं।बुद्ध स्वयं शाक्य थे। यह याद रखना आवश्यक है कि उस समय शाक्य जनजातीय चरण में थे, यद्यपि विकास के काफी उच्च स्तर तक पहुंच चुके थे। कुछ अगे्रज विद्वान भी इस तथ्य को नहीं पकड़ पाए । आगे श्री देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय जी लिखते हैं कि "शाक्य जनजाति के अंदर संभवत: कई कबीले 'गोत्र' थे। स्वयं बुद्ध गौतम "गोत्र" से थे। ऐसा कहा गया है कि यह ब्राम्हण कबीला था जो प्राचीन इसी ऋषि गौतम के वंशज होने का दावा करते थे किन्तु इसका प्रमाण बहुत मामूली है । हमें कहीं भी यह नहीं मिलता कि शाक्य स्वयं को ब्राम्हण कहते हों। दूसरी और कई ऐसे कबीले हैं, जो इस आधार पर बुद्ध के अवशेषों के कुछ भाग पर अपना दावा करते हैं कि बुद्ध की भांति वे भी खनिय थे ।यह खनिय का अर्थ योद्धा है, इस प्रकार देवीप्रसाद जी शाक्य में जनजातीय होने के तथ्य देते हैं। भगवान बुद्ध का जन्म 567 ई.पू. तथा निर्वाण 487 ई.पू. माना जाता है।

पिता का नाम शुद्दोधन और माता का नाम महामाया था।शुद्धोधन कपिलवस्तु गण के राजा थे। वे शाक्य जाति के इक्ष्वाकु वंश में थे। डॉ. बुद्ध प्रकाश कहते हैं कि यक्षु शब्द अक्वासा, अक्कका, यकाकू,यक्यू व इक्ष्वाकु का बदला हुआ रूप है। इनका सम्बन्ध उन हाइकसोस से हो सकता है जो सेमिटिक लोग थे जिनहोंने 19750 ई.पू. में मिश्र पर आक्रमण किया था । ये लोग मूल रूप से भूमध्य सागर तटीय प्रकार के लम्बे सिर वाले द्रविड़ लोग थे अर्थात बुद्ध आर्य नहीं थे । अनार्यो की तरह शाक्यों में गणतंत्र गणसंघ व्यवस्था थी । शाक्यगण वज्जीसंघ का एक घटक गण था । इसी प्रकार शाक्यों में मातृप्रधान परिवार व्यवस्था थी ।`` श्री नवल वियोगी संदर्भ देते हुए लिखते हैं कि "शाक्य बुद्ध का संबंध सूर्यवंश तथा इक्ष्वाकुओं की संतति से था। उनके धार्मिक जीवन के प्रारंभ में उन्हें नागराजा मुचलिंदा की शरण व सुरक्षा प्राप्त थी । जीवन पर्यंत नागों के साथ मित्रता के संबंध रहे और मुत्यु के समय के नाग राजाओं ने उनके अस्थि अवशेषों में से अपना हिस्सा मांगा और प्राप्त करने पर उन पर स्तूपों का निर्माण किया । डॉ नवल वियोगी अपनी इस बात के समर्थन में आगे कहते हैं कि-"बुद्ध धर्म तथा असुर नागों की संतानों में निकटता के क्या संबंध थे,इसके प्रमाण अमरावती व सांची के महास्तूपों के मूर्तियों तथा उभरे हुए चित्रों में मिलते हैं । इन महास्तूपों में हमें नागलोक, भगवान बुद्ध तथा उनके चिन्हों का सम्मान अथवा पूजा करते हुए दिखाई पड़ते हैं । - - इनमें से कुछ में बुद्ध के सिरों को फैले हुए सात नागफनों की सुरक्षा में देखा जाता है । यह नागफन नाग राजाओं की मुख्य पहचान है । ऐसा

लगता है अवश्य ही बुद्ध व नाग जातियों में कोई खून का संबंध था ।`` अत: उपर्युक्त अध्ययन से हमें निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं । १. बुद्ध को क्षत्रिय कहने के पीछे केवल एक ही दावा है कि वो राजा की संतान है। यह एक बहुत ही हल्का दावा है । २. बुद्ध द्वारा कई जगह शाक्य का पक्ष लेते हुए ब्राम्हणों से विवाद करना तथा ब्राम्हणों द्वारा शाक्यों को नीचा दिखाने की कोशिश यह सिद्ध करती है कि शाक्य निश्चित रूप से वर्ण व्यवस्था से बाहर की जाति थी, क्योंकि शाक्यों के क्षत्रिय होने पर ब्राम्हणों द्वारा नीचा दिखाये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता । ३. श्री देवीप्रसादचट्टोपाध्याय का तर्क कि शाक्य जनजातीय थे, बिना ठोस तथ्य के स्वीकार योग्य नहीं है, किन्तु ब्राम्हण नहीं है।'गौतम` गोत्र के आधार पर उनके तर्क स्वीकार योग्य हैं । यदि थोड़ी देर के लिये श्री देवीप्रसादचट्टोपध्याय का जनजातीय वाला तर्क स्वीकार कर लिया जाये तो श्री नवल वियोगी के द्वारा अनार्य होने के लिए दिये गये तथ्य उन्हें अनार्य तो सिद्ध करती है, किन्तु 'जनजातीय' होने पर अभी और पुष्टि की अपेक्षा है ।४. अब तक प्राप्त जानकारी के आधार पर इस नतीजे पर पहु!चा जा सकता है कि बुद्ध आर्य नहीं थे, न ही क्षत्रिय थे, किन्तु बुद्ध के नागवंशी संतति होने के स्पष्ट प्रमाण भी नहीं मिलते हैं । 5 डॉ. बुद्ध प्रकाश द्वारा प्रस्तुत तर्क कि` बुद्ध अनार्य है, स्वीकार योग्य है, क्योंकि अनार्य की विशेषता थी – 1गणतंत्र व्यवस्था 2. मातृप्रधान परिवार 3. द्रविड़ की तरह लम्बे सिर की बनावट ४. बुद्ध का संबंध सूर्यवंश तथा इक्ष्काकुओ से था, जो कि अनार्य वंश से सम्बन्धित थे। अत: इस निष्कर्ष की पुष्टि

देती है कि बुद्ध भारत के मूलवासी अनार्य की संतान थे। इतिहास से ऐसा ज्ञात होता है कि बौद्ध शासकों के पतन के बाद स्मृति काल में ही बुद्ध की जाति बदल कर क्षत्रिय की गई तथा उन्हें विष्णु का दसवां अवतार भी इसी काल में बनाया गया । यह प्रव्यि बौद्धों का हिन्दुकरण कहलाती है पुस्तक अंश -आधुनिक भारत में पिछड़ा वर्ग (पूर्वाग्रह मिथक एवं वास्तविकताएं) लेखक- संजीव खुदशाह

ऐसे ही भगवान ऋषभदेव को विष्णु जी का आठवां अवतार माना है जो जैनधर्म को भी वैदिक संस्कृति में माना है जबकि हर पुराण और चारों वेदों मे भगवान ऋषभ देव का वर्णन आता है, जिससे सिद्ध होता है कि भगवान ऋषभदेव ही इस युग के निर्माता हैं । सब को हिन्दुकरण का प्रयास किया गया है । भारत के राष्ट्रपति डॉ राधाकृषणन लिखते हैं कि वेद लिखने से पूर्व जैन धर्म अस्तीत्व में था । .....स्वतन्त्र जैन

वर्तमान के भगवान अरिहन्त

जैन संस्कृति के उपासक (सभी मान्यताओं एवं परम्पराओ) प्रति दिन महामन्त्र नवकार की अराधना, जाप करते समय सर्वप्रथम णमो अरिहन्ताणं का अच्चारण करते हैं । वह अरिहन्त है कौन ? क्या हम समझते हैं ? चौबीस तीर्थंकर ही अरिहन्त है । यदि हम उन को अरिहन्त कहेंगे तो फिर सिद्ध कौन ? वे निर्वाण से पूर्व सब अरिहन्त थे, क्योंकि अरिहन्त शरीरी होते हैं और सिद्ध अशरीरी होते हैं और णमो सिद्धाणं पद में आ गये । यदि हम उन्हें ही अरिहन्त मानें तो यह उचित नहीं, जैसे कोई अध्यापक प्रिन्सीपल बन जाए तो हम उसे मास्टर एवं टीचर ही समझे तो वह उस पद का अपमान है । इस समय श्रमण भगवान महावीर का शासन चल रहा है और

लगभग 2450 वर्ष पूर्व वे अरिहन्त थे और तीन लोक के ज्ञाता थे उन्हों ने अपने ज्ञान से भरतक्षेत्र के समान महाविद्याक्षेत्र में विचरते हुए अरिहन्त भगवन्तों का बोध हमें अपने गणधरों के माध्यम से जो आचार्य भगवन्तों ने ग्रहण किया बतलाया। वहाँ हर समय अरिहन्त विराजमान रहते हैं और रहेगें । जहॉ हम रह रहे है वह भरतक्षेत्र है । यहॉ आरे(पहला,दूसरा ,तीसरा चौथा, पॉचवॉ,छठा आरा) बदलते रहते है । अभी यहॉ पाँचवे आरा चल रहा है । इस आरे मे तीर्थंकर नही होते है । भरतक्षेत्र व ऐरावत क्षेत्र मे, वर्तमान काल मे तीर्थंकर नही विचरते है , महाविदेह क्षेत्र मे चौथा आरा है ,जहॉ सदा तीर्थंकर जन्म लेते है और विचरते है ।महाविदेह क्षेत्र मे भी मनुष्य है, हमारे जैसे मनोभाव वाले देहधारी है । वहॉ आयुष्य बहुत लम्बा होता है । वहॉ भी कर्मभूमि है। अहंकार, क्रोध, मान माया, लोभ भी है । वहॉ चौथा आरा होने की वजह से तीर्थंकर होने के साथ मन-वचन-काया की एकता होती है । हमारे यहॉ पाँचवा आरा होने की वजह से तीर्थंकर नही होने के साथ मन-वचन-काया की एकता टूट गई है । यही फ़र्क़ है चौथे और पॉचवे आरे मे । बाकी वहॉ सारी बाते हमारे जैसी है । हमारे भरतक्षेत्र के अलावा 14 और क्षेत्र है उन क्षेत्रों मे भी हमारे जैसे ही मनुष्य है । हमारे यहॉ कलयुगी है । वहॉ कही सतयुगी है तो कही कलयुगी ।श्री सीमंधर स्वामी वर्तमान अरिहन्त तीर्थंकर विराजमान है । वे अपने यहॉ नही पर दूसरी भूमी पर है वहॉ मनुष्य जा नही सकते । वे इस पृथ्वी से बाहर दूसरे क्षेत्र ,महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थंकर के रूप मे विराजमान है । हमारे भारत वर्ष के ईशान कोण मे करोड़ों

किलोमीटर की दूरी पर जंबुद्वीप के महाविदेह क्षेत्र की शुरूआत होती है । ये सब हमारी बुद्धि से परे है हमारी पृथ्वी (भरतक्षेत्र) पर पिछले 2400 साल से तीर्थंकरों का जन्म होना बंद हो चुका है । वर्तमान काल के सभी तीर्थंकर मे से तीर्थंकर सीमंधर स्वामी हमारी पृथ्वी के सबसे नज़दीक है और उनका भरतक्षेत्र के सभी जीवों के साथ ऋणानुबंध है। सीमंधर स्वामी भगवान की उम्र अभी 1,50,000 साल है । और ये अभी अगले 1,25,000 सालों तक धर्म प्रभावना रहेंगे । वे सारी दुनिया देख सकते है लेकिन हम उन्हे नही देख सकते ।

श्री सीमंधर स्वामी प्रभु के कल्याणयज्ञ के निमित्तों मे चौरासी गणधर,दस लाख केवलीज्ञानी महाराजा,सौ करोड़ साधु,सौ करोड़ साध्वियाँ ,नौ सौ करोड़ श्रावक व नौ सौ करोड़ श्राविका है । उनके शासन रक्षक यक्षदेव श्री चांद्रायणदेव और यक्षिणीदेवी श्री पांचागुली देवी है । आनेवाले चौबीसी के आठवें तीर्थंकर श्री उदयस्वामी के निर्वाण के पश्चात और नौवें तीर्थंकर श्री पेढालस्वामी के जन्म पूर्व श्री सीमंधर स्वामी और अन्य उन्नीस विहरमान तीर्थंकर भगवंत श्रावण शुक्ल पक्ष तृतीया के अलौकिक दिन को चौरासी लाख पूर्व की आयु पूर्ण करके निर्वाण पद को प्राप्त करेंगे ।

अत: उनके प्रति भक्ति और समर्पण से हमारा अगला जन्म महाविदेह क्षेत्र मे हो सकता है और भगवान सीमंधर स्वामी के दर्शन प्राप्त करके हम आंत्यातिक मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है ये सारी जानकारी शास्त्र व आचार्य भगवान द्वारा कथित है जो कि ज्ञानी पुरूष,चौदह लोक के नाथ है । वह है

हमारे अरिहन्त जिन्हें हम महामन्त्र के पहले पद से वन्दना नमस्कार करते हैं । नवकार मन्त्र के उच्चारण समय पहले पद के लिए अरिहन्त भगवन श्री सीमन्धर स्वामी ही मस्तीष्क में आना चाहिए । अरिहन्त भगवन को कोटिश वन्दन करने के उपरान्त कुछ लिखने मे गलती हो तो क्षमायाचना प्रार्थी हूं ।

स्वतन्त्र जैन जलन्धर-9855285970, 3.2.2020

मत मतान्तर विवाद में, मत उलझों मतिमान ।
सार ग्रहो सब मतन का, अपनी मति महान् ।।
निज आत्म को दमन कर पर आत्म को चीत ।
परमात्म का भजन कर, वही मत परवीण ।।

प्रवर्तिनी श्री पार्वती जी महाराज

कभी न कहो कि दिन अपने खराब हैं,
समझ लो कि हम कांटो से घिरे हुए गुलाब हैं।
रखो हौंसला वह मंजर भी आएगा,
प्यासे के पास चल कर समन्दर भी आएगा।
थक कर न बैठो,ऐ मंजिल के मुसाफिर,
मंजिल भी मिलेगी और
जीने का मजा भी आएगा.....।।

आभार

सर्वप्रथम अपने पूज्य माता-पिता जी का जिन्होंने मुझे जन्म देकर, सत्य, साहस, संघर्ष और निष्ठा का पाठ पढ़ाया ।

समस्त परिवार जन, भाई-बहन एवं नज़दीकी रिश्तेदार जिन्होंसे भरपूर स्नेह मिला।

अपने जीवन साथी स्व. सन्तोष का जिसने 43 वर्ष मेरे कदम-कदम मिला कर मुझे सन्तोष से जीने का मार्ग बतलाया ।

सामाजिक कार्यों में श्री किशनलाल जैन लोहेवाले प्रधान जैन सभा जालन्धर, लाला विद्या सागर जैन संस्थापक प्रधान एवं भूतपूर्व प्रधान श्री विनोद जैन, जैन कालोनी उपाश्रय सोसाईटी जालन्धर जिनके साथ मैनें महामन्त्री के रुप में कार्य किया, जिनसे मुझे हर प्रकार का मार्ग दर्शन मिला ।

शास्त्री श्री सूरजकान्त शर्मा सेवानिवृत अध्यापक जिन्हों ने अपनी निशुल्क सेवाएं प्रदान ही नहीं कि अपितु स्वयं मेरे निवास स्थान आकर सम्पर्क करते रहे ।

सुधा जैन एम प्लैनिंग फाईनल दिल्ली, रक्षित जैन बी.टैक तृतिय वर्ष थापर पटियाला, नमन जैन बी.टैक प्रथम वर्ष आई.आई.टी जम्मू (दोहती-दोहते) जो बराबर विचार-विमर्श करते सुझाव देते रहते हैं ।

सम्यक्- सक्षम देहरादून प्राय प्रतिदिन फोन पर मेरा कुशलमंगल पूछते हैकि डायलिसस हो गया,किस दिन

हुआ,अब कब होना है । मैत्री जैन तो हर समय मेरा विशेष ध्यान रखती है ।

समस्त श्रमण-श्रमणियों का जिन के उपदेश से मैं देव गुरु धर्म को समर्पित हुआ ।

बेटिया दमाद-श्रद्धा-प्रदीप जैन फरीदकोट, गरिमा-पंकज जैन देहरादून और अर्चना राजेश जैन के पास मैं रह रहा हूँ अपने व्यस्त जीवन मे अमुल्य समय निकाल कर मेरी सेवा में रत रहते हैं । मैं इन सब का हार्दिक आभारी हूँ ।

1.1.2020 स्वतन्त्र जैन जालन्धर

तोड़ो नफरत की जंजीरे, जिन से जकड़े हैं पैर हमारे,
सोने की हैं तो क्यों आपस में पड़े दरारें ।
अनुराग,घृणा, संघर्षण,उत्तम अधम विवेचन,
त्यागो भाव द्वन्ध के, है त्याज्य उभय आलम्भन ।
वीतराग के पथगामी है, पावें समता विनय विवेक,
राग द्वेष तज स्वतन्त्र वीर उपासक हो जावें एक ।।

स्वतन्त्र जैन जालन्धर

अशुभ कर्म के हरण को, मन्त्र बड़ो नवकार ।

वाणी द्वादश अंग में, देख लियो तत्व सार ।।

पण्डित पर उपदेश को, जग में होत अनेक ।

चलें आप सत पन्थ में, सो लाखन में एक ।।

क्षमा सुल्य कोई तप नही, सुख सन्तोष समान।

तृष्णा सम व्याधि नहीं, धर्म न दया समान ।।

ज्ञान पठन उद्यम करो, वृद्ध काय पर्यन्त ।

ज्ञान पढ़े पहुँचे जहाँ, नहीं पहुँचे धनवंत ।।

.....प्रधानाचार्य श्री सोहन लाल जी महाराज

अर्हत पुराण

जैन इतिहास के झरोखों से

एवं

कुछ ऐतिहासिक पुरानी कथाएं

तथ्य संकलन प्रस्तुतकर्ता

स्वतन्त्र जैन जालन्धर 9855285970

अर्चना-राजेश जैन

86, करतार एवन्यु हैबोवाल,लुधियाना